Chap-2

द्वितीय अध्याय

हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध का स्वरूप और विकास

(क) आदिकालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध

(ख) भक्तिकालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध

(ग) रीतिकालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध

(घ) आधुनिककालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध

- (i) भारतेन्दु युग
- (ii) द्विवेदी युग
- (iii) छायावाद युग
- (iv) प्रगतिवाद
- (v) प्रयोगवाद
- (vi) नयी कविता

द्वितीय अध्याय

हिन्दी कविता में ग्राम्य-बोध का स्वरूप और विकास

प्रामाणिक हिन्दी कोश के अनुसार ग्राम्य का अर्थ– ''ग्राम्य वि० (सं०) (1) गाँव या देहात से सम्बन्ध रखने वाला। (रूरल) (2) ग्रामीण, देहाती। (3) प्रकृत, ठेठ। (4) जो सुनने देखने आदि में भद्दा जान पड़ें, अश्लील, अशिष्ट।''[1] होता है। 'ग्राम्य' की अपेक्षा 'लोक' की व्यापकता कहीं अधिक है। ग्राम्य संस्कृति को लोक संस्कृति से पूर्णतया अलग करके नहीं देखा जा सकता। वास्तव में गाँव की संस्कृति या ग्राम्य–संस्कृति ही लोक संस्कृति है। यह संस्कृति उपनगरों और नगरों में भी दिखायी पड़ती है। यह संस्कृति जन्म से लेकर मृत्यु तक आपसी भाईचारे, आत्मीयता और सहभागिता पर आधारित है। ग्राम्य संस्कृति कृषकों तथा श्रमिकों के मध्य मुस्कराती हैं, चूँकि इसका विकास पूर्णतया प्राकृतिक परिवेश में हुआ है अतः प्रकृति की गहरी अनुभूति इसमें पायी जाती है।

आदिकालीन हिन्दी कविता अधिकाँशतः प्रबन्ध काव्यों के रूप में अभिव्यक्त हुई। कथानक–रूढ़ियों, काव्य–रूढ़ियों, किम्वदंतियों तथा अनुश्रुतियों के सहारे सृजित काव्य में ग्राम्य–चेतना घनीभूत रूप में अभिव्यक्त हुई है।

भक्तिकालीन हिन्दी कविता लोकोन्मुखी कविता है। उसने सामंतवादी युग में सामन्तवादी व्यवस्था की अमानवीयता की आलोचना की और अपने को सामान्य जनजीवन से जोड़ा।

रीतिकालीन हिन्दी काव्य अधिकॉशतः दरबारों में लिखा गया उसमें लोकोन्मुखता कम एवं श्रृंगारपरकता की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। परन्तु उसमें प्राकृतिक–छवियों, ऋतु–वर्णन, ग्रामीण परिवेश एवं सामान्य जनजीवन से जुड़े प्रसंगों का पूर्णतया अभाव नहीं है।

---

1. आचार्य रामचन्द्र वर्मा–प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृ० 233

आधुनिक कालीन हिन्दी कविता अपनी संवेदना आस–पास के जीवन से ग्रहण करने लगी। भारतेन्दु युगीन कवियों ने पारंपरिक ब्रजभाषा के सहारे लोक प्रचलित काव्य–रूपों में आधुनिक विचारों वाली कविताएँ लिखी तथा अकाल, मँहगाई, टैक्स, भ्रष्टाचार से त्रस्त आम जन–जीवन की समस्याओं को उद्घाटित किया। द्विवेदी युग में कविता में खड़ी बोली प्रतिष्ठित होने लगी थी। पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं के माध्यम से प्रबन्ध–काव्यों का सृजन प्रभूत मात्रा हुआ। प्रकृति–परकता, पारिवारिक मूल्य तथ राष्ट्रीय भावना को द्विवेदी युगीन कविता में पर्याप्त महत्व दिया गया। जो मूलतः हमारी ग्राम्य–संस्कृति से जुड़े हुए मूल्य हैं। छायावाद में प्रकृति को घनीभूत रूप में तथा व्यापकता के साथ चित्रित किया गया है जिसमें ग्रामीण संस्कृति जीवंत रूप में अभिव्यक्त हुई है। प्रगतिवादी काव्य किसानों–मजदूरों के शोषण का विरोध करते हुए श्रम को महत्व देता है तथा सहज, सामान्य जीवन–स्थितियों में भी सौन्दर्य देखता है। प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति और ग्राम जीवन के अनुपम चित्र खींचे है। प्रयोगवदी कविता आदर्श के स्थान पर व्यंग्य और विद्रूप के माध्यम से युगीन जीवन की जटिलता तथा विसंगतियों को अभिव्यक्त करती है। नयी कविता मानव जीवनको समग्रता में चित्रित करती है। 'लघुमानव' तथा सामान्य मनः स्थितियों को कविता में सशक्त रूप में अभिव्यक्त करती हैं शहरी परिवेश के साथ–साथ ग्राम्य परिवेश को भी नयी कविता में सघन और सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। हिन्दी कविता अपनी विकास यात्रा में विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरी है। अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करने में उसे शिल्प और संवेदनागत विभिन्न परिवर्तनों और परिष्कारों से होकर गुजरना पड़ा हैं किन्तु हिन्दी कविता की मूल संवेदना ग्राम्य संस्कृति एवं वहाँ के प्राकृतिक परिवेश से जुड़ी हुई है जो तमाम परिवर्तनों के बावजूद भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

(क) आदिकालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध :

आदिकाल में हिन्दी भाषा साहित्यिक अपभ्रंश के साथ–साथ चलती हुई क्रमशः जनभाषा के रूप में साहित्य–रचना का माध्यम बन रही थी। किसी भी भाषा का साहित्य अपने समय की उपज होता हैं आदिकाव्य भी तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित हुआ। आदिकालीन कवि अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशस्ति किया करते थे और उनकी वीरता का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन कर उन्हें उत्साहित कियाकरते थे। इस कारण इस युग में वीरगाथात्मक काव्य अधिक लिखे गये इसके अतिरिक्त इस काल में विरह गीत भी लिखे गये, लोक कथाओं को आधार बनाकर काव्यों की रचना हुई कवियों ने राजा की वीरता के साथ–साथ उनकी केलिक्रीड़ाओं का भी वर्णन किया युद्ध और प्रेम से युक्त ऐसे काव्यों को "रासो काव्य" कहा गया। रासों काव्य की सबसे प्रमुख कृति पृथ्वीराजरासो है, रासो काव्यों का निर्माण मध्ययुग तक होता है। इनमें ह्रासोन्मुखी सामन्ती प्रवृत्ति का चित्रण स्पष्टतः देखा जा सकता है। नाना प्रकार की कथानक रूढ़ियों और कवि–समयों का चित्रण रासोकार करते रहे है। युद्धों और विवाहों के चित्रण द्वारा मिथ्याभिमान और विलास से जर्जर जीवन को उभार कर रासो के रचयिताओं ने समाज का सच्चा सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास प्रस्तुत किया है। रासो ग्रन्थों में सामाजिक जीवन की झाँकी के भरे–पूरे चित्र अवश्य मिलते हैं। 'रासो ग्रन्थो' तथा 'वीरगाथाकाल' के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि– "राजाश्रित कवि और चारण जिस प्रकार नीति, श्रृंगार आदि के फुटकल दोहे राजसभाओं में सुनाया करते थे, उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन भी किया करते थे। यही प्रबंध परंपरा 'रासो' के नाम से पायी जाती है जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने 'वीरगाथाकाल' कहा है।"[1] इस काल की प्रमुख रचनाओं में नरपति नाल्ह रचित बीसलदेव रासो, चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराजरासो, विद्यपति

---

1. आचार्य राम चन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 3

रचित कीर्तिलता, कीर्तिपताका, पदावली तथा ढोला मारू रा दूहा और खुसरों की कविता प्रमुख है।

आदिकालीन साहित्य में पर्याप्त विविधता पायी जाती है। यह विविधता विषयों, काव्य–रूपों, तथा काव्य–भाषा के आधार रूपों में पायी जाती है, एवं वह विचारों, बोलियों और बानियों से आरंभ होकर वह रचनात्मक परिकल्पना तक उतरी है। इस विषय में प्रख्यात आलोचक प्रो0 रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि– "आदिकालीन कवि धार्मिकता और ऐहिकता, वीर और शृंगार, ईश्वरत्व और मनुष्यत्व के द्वन्द्वों का समाहार करने में संलग्न दिखाई देता है। और यह समाहार अंतहीन प्रक्रिया है......... भारतीय संस्कृति सामासिक है क्योंकि उसके विकास में अनेक जातीय तत्व घुल–मिल गए हैं, हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति की प्रकृति सामासिक है क्योंकि वहाँ कई जनपदों की बोलियाँ और क्षेत्रीय विशेषताएँ समरस हुई हैं। वैविध्य और समरसता जैसे यही इस पूरी सांस्कृतिक विकास–प्रक्रिया का मूल सूत्र हो"।[1] आदिकालीन साहित्य की भाषा कठिनता से सरलता की ओर जाती हुई व्यापक रूप ग्रहण कर रही थी। जनभाषा का रूप धारण करके वह धीरे–धीरे जनजीवन के सभी रूपों को प्रस्तुत करने में समर्थ होती जा रही थी। डॉ० नगेन्द्र अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसको स्पष्ट करते हुए कहते हैं: "आदिकालीन साहित्य जन–जीवन की जिन अनुभूतियों से प्रकट हुआ था उसमें पर्याप्त विविधता थी। अतः वह एक भीड़ का सायास लिखित साहित्य नहीं है, अपितु एक सचेतन समाज की सहज स्थितियों से उत्पन्न साहित्य है। यही कारण है कि उसमें जीवन की विभिन्न दशाओं और स्वच्छन्द प्रवृत्तियों के विविध चित्र मिलते हैं कथ्य की दृष्टि से आदिकालीन साहित्य में एक साथ कई परम्पराओं का उदय दिखायी देता है।"[2] प्रकृति के अनेक विध रूपों के साथ मनुष्य–जीवन के विभिन्न स्वरूपों को चित्रित करने में

---

1. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 23
2. डॉ0 नगेन्द्र–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 80–81

भी इस युग के कवि पूर्ण सक्षम थे। उनके पास प्रकृति के सौन्दर्य को ग्रहण करने की ही नहीं, उससे अपनी अभिव्यंजना को समर्थ बनाने की भी प्रतिभा थी।

बीसलदेव रासो वैसे तो रासो काव्य–परम्परा में आता है, किन्तु गेय होने के कारण एवं लोकजीवन के तत्वों से संयुक्त होने के कारण लौकिक साहित्य के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है इसके रचयिता नरपति नाल्ह बताये जाते हैं। यह एक विरह–गीत–काव्य हे। "बीसलदेव रासो" का विरह वर्णन अपने आप में अनूठा हैं नायिका राजमती अपने पति के वियोग से दुःखी हो रही है, प्रत्येक ॠतु में अपने पति की प्रतीक्षा करती है, पर उसका पति नही आता। काव्य–पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"फागुण फरहर्या कंपिया रूष।
चितइ चमकियउ निसि नींद न भूष।
दिन रायां रितु पालटी।
म्हाकउ मूरष राउ न देषइ आइ।
जीवउं तउ जोबन सही।
फरहरइ चिहुं दिसि बाजइ छइ बाइ।।" [1]

नायिका के विरह वर्णन के माध्यम से कवि ने ग्रामीण परिवेश तथा प्रकृति का जीवंत चित्र खींचा हैं फाल्गुन में जोरों की हवा चल रही हैं वृक्ष काँप रहे हैं। नायिका का चित्त बिजली के समान चमक रहा है, अर्थात् चित्त चंचल है। रातों की नींद और भूख गायब है दिन रंगीन हो गया है, ॠतु परिवर्तित हो गयी है। पर मेरा राजा मुझे देखने नहीं आया। नायिका अपनी सखी से कहती है। कि सखि जब तक यौवन है तभी तक मैं जीवित हूँ। नायिका पुरूष मनोविज्ञान की जानकार है, वह पुरुषों की मनोवृत्ति को भलीभाँति पहचानती है।

बीसलदेव रासो की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं– "नाल्ह' के इस बीसलदेव रासो में जैसा कि होना चाहिए था, न तो उक्त वीर राजा की ऐतिहासिक चढ़ाइयों का वर्णन है, न उसके शौर्य पराक्रम का। श्रृंगार रस की दृष्टि से विवाह और रूठकर विदेश जाने का

---

1. डॉ0 माताप्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचंद नाहटा–बीसल देव रास पृ० 152–53

(प्रोषित पतिका के वर्णन के लिए) मनमाना वर्णन हैं अतः इस छोटी सी पुस्तक को बीसलदेव ऐसे वीर का 'रासो' कहना खटकता है। पर जब हम देखते हैं कि यह कोई काव्य ग्रंथ नहीं है केवल गाने के लिए इसे रचा गया था, तो बहुत कुछ समाधन हो जाता है।"[1]

बीसलदेव रासो हिन्दी के आदि काल की एक श्रेष्ठ काव्य–कृति है सामन्ती जीवन के प्रति गहरी अरूचि का सजीव चित्र इस काव्य में मिलता है। 'मेघदूत' और 'सन्देशरासक' की संदेश–परम्परा भी इसमें मिलती है। शृंगार के वियोग और संयोग पक्षों के अत्यन्त मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं। कुछ काव्य पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं:

"अस्त्रीय जनम काइ दीघउ महेस।
अवर जनम थारइ घणा रे नरेस।
रानि न सिरजीय रोझडी
घणह न सिरजीय घउलीय गाइ।
बनषंड काली कोइली।
हउं बइसती अंबा नइ चंपा की डाल।
भषती द्राष वीजोरडी।
इणि दुष झूरइ अबला जी बाल।।'[2]

नायिका ईश्वर को सम्बोधित करते हुए कहती है कि मुझे नारी के रूप में क्यों पैदा किया? नरेश तुम्हारे पास तो और भी जन्म थे। तुम मुझे रानी न बनाकर नीलगाय बना देते ताकि स्वतन्त्र होकर मैं घूम सकती। धन्या न बनाकर मुझे उजली गाय बना देते, वन की काली कोयल बना देते । मैं एक डाल से दूसरी डाल पर फुदकती फिरती और अंगूर अनार का स्वाद चखती ˙ यहाँ तो अबला बाला के समान पराधीन रहकर मैं सूख रही हूँ। इस काव्य के वर्णनों में एक संस्कार–दृष्टि मिलती है। जो नारी–गरिमा की स्थापना करती हैं कवि ने प्रकृति के रमणीय चित्रों से भी भाव–चित्रण को सौन्दर्य दिया है। बारह मासों तथा ऋतुओं के प्राकृतिक चित्र संयोग और वियोग में उद्दीपन का काम करते

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 20
2. डॉ0 माता प्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचंद नाहटा–बीसलदेव रास, पृ० 162–63

हैं। विरह की विभिन्न दशाओं के वर्णन में समस्त प्रकृति सहायक हुई है। बीसलदेव रासो में प्रकृति तथा ग्रामीण परिवेश के चित्रण के माध्यम से कवि ने पूरी ग्रामीण संस्कृति को जीवंत रूप में उभारा है।

आदिकाल की प्रतिनिधि कृतियों में कवि चन्दबरदाई रचित "पृथ्वीराज रासो" का महत्व सर्वोपरि है। चंद नामक भट्ट (भाट) पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था। पूरी कृति दरबारी काव्य–परम्परा की प्रशस्तिमूलक रूढ़ियों से भरी पड़ी है प्रामाणिकता के द्वंद्व से परे पृथ्वीराज रासो एक उच्चकोटि की साहित्यिक कृति है जिसमें भावात्मक सौन्दर्य के साथ कलात्मक वैशिष्टय का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। अपने युग के अनुरूप इसमें वीर एवं शृंगार रस की गंगा–यमुना एक साथ प्रवाहित हुई है। पृथ्वीराज रासों की प्रामाणिकता के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि– "पृथ्वीराजरासो का अध्ययन करने के बाद और नवीं–दसवीं शताब्दी में प्रचलित कथाओं के लक्षण और काव्य–रूपों को ध्यान में रखकर देखने से ऐसा लगता है कि यद्यपि चंद के मूल वचनों को खोज लेना अब भी कठिन है किन्तु उसमें क्या–क्या वस्तुएँ थी और कौन–कौन सी कथाएँ थी, इस बात का पता लगा लेना उतना कठिन नहीं है। उन दिनों की कथाएँ दो व्यक्तियों के संवाद के रूप में लिखी जाती थी। चंद ने रासो को शुक और शुकी के संवाद में लिखा था जैसे विद्यापति ने कीर्तिलता को भृङ्ग और भृङ्गी के संवाद के रूप में लिखा था।"[1]

वास्तव में पृथ्वीराज रासो एक प्रशस्ति काव्य है। कवि चन्दबरदाई ने अपने आश्रय दाता की कीर्ति का वर्णन उसे ईश्वर कहकर अतिश्योक्तिपूर्ण ढंग से किया है चन्द ने आध्यात्म, राजनीति, धर्म, योगशास्त्र, कामशास्त्र, शकुन, युद्ध, सेना की सज्जा, विवाह, संगीत–नृत्य, फल–फूल, पशु–पक्षी, ऋतुवर्णन, संयोग–वियोग शृंगार, बसंतोत्सव सभी का वर्णन किया है। फलतः यह कृति साहित्य और तत्कालीन समाज दोनों की ही चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब है। अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों की सभी काव्य–रूढ़ियाँ इसमें मिलती हैं। वस्तु वर्णन

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास, पृ० 46

के विषय में डॉ0 नगेन्द्र का कहना है: ''पृथ्वीराज रासो' में वस्तु–वर्णन का भी आधिक्य है। कवि ने बड़ी तन्मयता के साथ नगरों, वनों, सरोवरों किलों आदि का वर्णन किया है। युद्ध क्षेत्र के दृश्य तो अद्भुत प्रतिभा का परिचय देते ही हैं, कवि ने समय और क्रिया को एक साथ बिम्बों में बाँधकर रंग और ध्वनियों को भी रूपायित कर दिया है।''[1] इस प्रकार इसमें प्रकृति एवं ग्राम जीवन से जुड़ी छवियों को पर्याप्त महत्व मिला है।

''ढोला मारू रा दूहा'' राजस्थान की प्रसिद्ध गेय लोक कथा है जिसका मुख्य विषय श्रृंगार है। गयारहवीं शताब्दी में रचित यह काव्य लोक कथा पर आधारित है। इसमें ढोला नाम के राजकुमार और मारवड़ी नाम की राजकुमारी की प्रेमकथा वर्णित है। यह लोक प्रसिद्ध प्रेमगाथा आदिकालीन श्रृंगार–काव्य–परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। 'राउलवेल' के कवि रोड़ा ने प्रेम वर्णन की जो परम्परा हिन्दी में आरम्भ की थी, उसको 'ढोला–मारू रा दूहा' की रचना से विकास की एक नई दिशा प्राप्त हुई। यह एक अत्यन्त सरसकाव्य कृति है जिसमें प्रेम और विरह के अनेक मनोरम चित्र अंकित किये गये हैं तथा जिसमें राजस्थान के प्राकृतिक परिवेश के चित्ताकर्षक चित्र प्रस्तुत किए गये हैं।

अब्दुल रहमान द्वारा रचित ''संदेश रासक'' आदिकालीन प्रेमपरक काव्यों में प्रमुख स्थान रखता है। लोक–प्रचलित प्रेमाख्यान के आधार पर शुद्ध लौकिक प्रेम की प्रस्तुति करने वाला यह पहला रासक काव्य है।

महाकवि विद्यपति उन रस सिद्ध कवियों में से हैं। जिनका काव्य युग–युगान्तर तक मानव की कोमल भावनाओं को दुलारता रहा है। श्रृंगार और भक्ति–दोनों को उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया है। आज विद्यापति की गणना हिन्दी के महान कवियों में की जाती है। हिन्दी साहित्य में विद्यापति को वही स्थान प्राप्त है जो संस्कृत में जयदेव को प्राप्त हैं। विद्यापति की पदावली उनकी महत्वपूर्ण रचना है। इस पदावली में रस, कला, भाव, सौंदर्य और प्रकृति–चित्रों की सुन्दर छवियॉ दिखायी देती हैं। विद्यापति के बारे में आचार्य

---

1. डॉ0 नगेन्द्र–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 75

रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि– ''विद्यापति के पद अधिकतर श्रृंगार के ही हैं, जिनमें नायिका और नायक राधा–कृष्ण हैं। इन पदों की रचना जयदेव के गीतकाव्य के अनुकरण पर ही शायद की गयी हो। इनका माधुर्य अद्‌भुत है। विद्यापति शैव थे। उन्होंने इन पदों की रचना श्रृंगार काव्य की दृष्टि से की है, भक्त के रूप में नहीं। विद्यापति को कृष्ण भक्तों की परंपरा में न समझना चाहिए।''[1] रसिकों ने विद्यापति के काव्य में माँसल सौंदर्य और विरह की करूण रागिनी के दर्शन किये तो भक्तों ने उसमें अपने परम आराध्य के अलौकिक सौन्दर्य एवं उनकी मनोहरी क्रीड़ाओं का आनन्द लिया। विद्यापति के बारे में प्रो0 रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि– ''विद्यापति में वैष्णव की मर्यादा और शैव का तादात्म्य–भाव दोनों एक साथ मिलते हैं। काम–भाव और शरीर का सौन्दर्य उनके यहाँ उत्सव–रूप में हैं। इसीलिए चिर–परिचित होते हुए भी वे चिर–नवीन हैं। यही कारण है जिससे मिलते–जुलते शारीरिक अनुभवों की अलग–अलग पदों में आवृत्ति होने पर भी अपने तन्मयता भाव से वे सभी विशिष्ट हो उठते हैं।''[2]

विद्यापति की कविताओं में घोर श्रृंगारिकता, वन–उपवन तथा प्राकृतिक दृश्यों की बहुलता एवं लोकजीवन की छवियों का खूब अंकन हुआ है, इसी को देखते हुए डॉ0 बच्चन सिंह ने विद्यापति की कविताओं के विषय में लिखा है: ''विद्यापति की कविता का स्थापत्य श्रृंगारिक है। उसे आध्यात्मिक कहना खजुराहों के मंदिरों को आध्यात्मिक कहना है, उनके श्रृंगार में यौवनोन्माद का शारीरिक आमन्त्रण है, संभोग का सुख है, विलास की विह्‌वलता है, वियोग में स्मृतियों का संबल और भावुकतापूर्ण तन्मयता है।''[3] विद्यापति अपने वैयक्तिक जीवन में भले ही शैव रहे हो परन्तु वे भक्त की अपेक्षा श्रृंगारिक कवि ही स्वीकार किये गये हैं। राधा–कृष्ण की प्रेम–क्रीड़ा विषयक उनके पदों में सूर का

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 32
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 29
3. डॉ0 बच्चन सिंह–हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 63

सा भक्त हृदय नही धड़कता बल्कि उनमें जयदेव की रसिकता का उच्छलन दिखायी पड़ता है। विद्यापति पर वैदिक धर्म–साधना अथवा बौद्ध और जैन धार्मिकता का प्रभाव दिखायी नहीं पड़ता। आचार्य शुक्ल ने विद्यापति में भक्ति–भावना खोजने वालों का मजाक उडाते हुए लिखा "आध्यात्मिक रंग के चश्में आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने 'गीतगोविन्द' के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी।"[1]

विद्यापति दरबारी कवि होते हुए भी लोक अनुभवों से सम्पृक्त हैं। उन्होंने ग्राम्य नारियों के गीतों को सुना था और लोक यथार्थ के मर्म को पहचाना था। इसलिए उनके गीतों में लोक गीतों की धुन तो है ही उनकी सहजता भी है। लोकगीतों में अनलंकृत ढंग से मन के भावों को व्यक्त किया जाता है। खेत, खलिहान तथा ग्राम्य प्रकृति के परिवेश में लोक गीतों का अकृत्रिम प्रवाह हृदय का स्पर्श करके भाव–विभोर कर देता है। पशु–पक्षियों से जुड़े हुए शकुनों, त्योहारों तथा लोक आस्थाओं का उसमें विशेष पुट रहता है। उदाहरणार्थ–

"मोरा रे आँगना चानन केरि गछिआ, ताहि चड़ि कुररए काग रे।
सोने चोंच बाँधि देव तोहि बायस, जओपिआ आओत आज रे।।
गावहु सखि सब झूमरि लोरी, मयन–अराधए जाऊँ रे।
चहुदिसि चम्पा मउली फुलति, चान इजोरिया राति रे।।
कइसे कए हमें मयन अराधव, होइति बड़ि रति साति रे।।
विद्यापति कवि गाबए तोहर, पहु अछ गुनक निधान रे।
राअ भोगीसर सब गुन आगर, पदमा देइ रमान रे।।"[2]

विद्यापति की कविता में लोक जीवन के प्रति गहरी सम्पृक्ति पायी जाती है। 'देसिल बयना सब जग मिट्ठा' का आदर्श लेकर लिखने वाला कवि लोक चेतना से अछूता कैसे रह सकता है। जिस कवि ने जनभाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और उस पर गर्व किया वह निश्चय ही लोक चेतना सम्पन्न कहा जायेगा। विद्यापति की लोकप्रियता भी इस बात का प्रमाण

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 32
2. सम्पादक : डॉ0 राम किशोर शर्मा–विद्यापति पदावली, पृ० 60

है कि उनकी कविता दरबारों में जन्म लेकर भी लोक–परम्परा से कटी नहीं इसीलिए मन्दिरों की घण्टियों के साथ–साथ विवाह के वाद्य–यन्त्रों तक का साथ विद्यापति के गीत आज तक दे रहे हैं। लोकगीतों की सी आशावादिता विद्यापति में हैं। विद्यापति ने मिलन और विरह के जो चित्र अंकित किए हैं वे निश्चय ही लोक जीवन की अभिव्यक्ति में सक्षम हैं। सामाजिक कुरीतियों और विशेषकर अनमेल विवाह पर जिस प्रकार का व्यंग्य कवि ने किया है उससे भी कवि की लोक सम्पृक्ति स्पष्ट होती है। पावस ऋतु के यथार्थ रूप का चित्रण करते हुए कवि ने उसे वियोग के उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किया है। शंका और त्रास भावों की सुन्दर अभिव्यंजना कवि ने की है। प्रस्तुत पंक्तियों में राधा की विरह–व्यथा का चित्रण किया गया है। पंक्तियाँ निम्नोक्त हैं–

"सखि हे हमर दुखक नहि ओर।
ई भर वादर माह भादर, सून मंदिर मोर।।
झंपि घन गरजंति संतत, भुवन भरि बरसंतिया।
कन्त पाहुन काम दारून, सघन रवर सर हंतिया।।
कुलिस कत सत पात मुदित , मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक, फाटि जाएत छातिया।।
तिमिर दिग भरि घोरि यामिनि, अथिर बिजुरिक पाँतिया।
विद्यापति कह कइसे गमाओब, हरि बिना दिन–रातिया।।"[1]

विद्यापति के काव्य में प्रकृति–चित्रण के विविध रूप हैं। कहीं प्रकृति प्रेरणा देती है, कहीं भावों की अतिशय उत्तेजना का कारण बनती है। ग्राम जीवन तथा वहाँ की संस्कृति में विद्यापति रचे–बसे है, उनकी कविताएँ इसकी प्रबल साक्षी हैं।

आदिकालीन हिन्दी काव्य में अमीर खुसरों खड़ी बोली हिन्दी के प्रथम कवि स्वीकार किये जाते हैं। पहेलियों, मुकरियों एवं गजलों के माध्यम से उन्होंने सामान्य जन–जीवन एवं ग्रामीण समाज का यथार्थ चित्र खींचा है।

प्रकृति और मानव का आत्मीय सम्बन्ध चिरकाल से रहा है। मनुष्य की चेतना और उसका जीवन प्रकृति के सौन्दर्य, उसके वैशिष्ट्य एवं परिवर्तनशील

---

1. सम्पादक : डॉ0 राम किशोर शर्मा–विद्यापति पदावली, पृ0 57

नित्य–नूतनता से प्रभावित रहें हैं। आदि कालीन हिन्दी कविता का दौर वह दौर था जब मानव जीवन में कृत्रिमता और यान्त्रिकता का हस्तक्षेप बहुत कम था। वह प्रकृति पर पूर्णतया निर्भर रहता था तथा उसके साथ सामंजस्य बनाकर जीवन यापन करता था, ऐसे में कला और साहित्य भी प्रकृति और लोकजीवन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। आदिकालीन हिन्दी काव्य में ग्रामीण जीवन की विसंगतियाँ , प्राकृतिक वर्णन, विरहकाव्य, श्रृंगारिक वर्णन, धार्मिक साहित्य बहुलता में लिखे गये। प्रबन्ध काव्यों में कथानक–रूढ़ियों और काव्य–रूढ़ियों का जमकर प्रयोग किया गया है लोकगीतों तथा मुक्तक काव्यरूपों में गेय पदों की रचना और लोक प्रचलित काव्यरूपों का खूब प्रयोग किया गया है। इस प्रकार हम देखते है कि सम्पूर्ण आदिकालीन हिन्दी कविता ग्राम्य–बोध से आच्छादित है।

(ख) भक्तिकालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध :

भक्ति भावना का महल ईश्वर, संसार और मनुष्य के आपसी सम्बन्धों की विवेचना करने वाले दार्शनिक विचारों की नींव पर खड़ा है। शताब्दियों तक उपासना करने के पश्चात् मनुष्य ने भक्ति को दार्शनिक रंग प्रदान किया। जब दार्शनिक विचारधारा का विकास हो गया तब भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। भक्ति एक भावना है जिसका मूलाधार ईश्वर–पूजा है। कविता भक्तिकाल में साधन है, साध्य नहीं। साध्य के रूप में तो भक्ति को ही मान्यता प्राप्त हुई है भक्ति वास्तव में ईश्वर के प्रति भक्त के प्रेम की अभिव्यक्ति है। भक्ति काव्य भक्त को लोकोत्तर अनुभूति की ऐसी स्थिति की ओर प्रवृत्त करता है जो उसके चित्त को संसार की तमाम क्षुद्रताओं से परे अनुपम आनंद की उपलब्धि कराती है। यह भक्ति काव्य ''किसी क्षणिक भावावेग अथवा इन्द्रियजन्य भावोन्माद की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, अपितु यह ठोस तथा उर्वर धरातल की उपज है।'' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'श्रद्धा–भक्ति' निबन्ध में भक्ति के बारे में लिखा है: ''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति हैं जब पूज्यभाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा–भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के

साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।"[1] भक्तिभाव की व्यापकता की चर्चा करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं: "दक्षिण से आया हुआ भक्तिवाद समाज में प्रचलित वर्णव्यवस्था और ऊँच–नीच मर्यादा को स्वीकार करके भी उसकी कठोरता को शिथिल करने में समर्थ हुआ। इसके पास अनंत शक्ति, ऐश्वर्य और प्रेम के आकर लीलामय भगवान की शक्ति का संबल था। एक बार भगवान की शरण गहने पर नीच–से–नीच व्यक्ति अनायास भवसागर पार कर सकता था। इस युग के हिन्दू गृहस्थ के लिए यह एक महत्वपूर्ण निधि थी। इसे बौद्ध और नाथ सिद्ध नहीं दे सके थे, टीका और निबन्धों के लेखक शास्त्रज्ञ विद्वान नही बता सके थे और अलंकारों से लदी हुई कविता भी नहीं दिखा सकी थी।"[2]

मुख्यतः भागवत वैष्णव धर्म के प्रचार तथा प्रसारार्थ प्रारंभ हुआ भक्ति आन्दोलन क्रमशः इतना व्यापक और सार्वभौम रूप धारण करता गया कि इसमें शैव, शाक्त आदि धर्म तथा बौद्ध और जैन सम्प्रदाय आदि तक अंतर्भूत होते चले गये। उक्त समस्त मतानुयायियों द्वारा भक्ति की पुर्नस्थापना व प्रसार हेतु जो लोकोन्मुखी काव्य, लोकभाषा में रचा गया था, अपने स्वरूप में चिरन्तन, लोक कल्याणकारी भाव को धारण करने वाला था। एकान्त साधना के स्थान पर वह समाज को दृष्टि में रखकर व साथ लेकर चलने वाला था समाज में व्याप्त विविध विभेद उस युग की असाध्य व्याधि थी जिसे भक्तिकाव्य के अन्तर्गत कम करने के सुगम मार्ग ढूँढे गये। वाह्याडम्बर, धर्माडम्बर, जातिभेद, वर्णभेद, धर्मान्तरण आदि को भरसक निर्मूल व सारहीन बताते हुए भक्तकवि निरंतर प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर की ही सृष्टि सिद्ध करते थे। परिणामस्वरूप उपेक्षित जनजीवन में, अन्त्यजों और दलितों की ओर भी भक्तिकाव्य समन्वयात्मक भाव से अभिमुख हुआ लोक को इस काव्य में अपने मन की अनुगूँज सुनायी दी। समाज में भेदबुद्धि के दानव ने जो क्रूरता फैला रखी थी, उस पर यह सौहार्द्र व

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–चिन्तामणि : भग–1, पृ० 32
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास, पृ० 66

सम्भाव का लेप लगाने वाला काव्य निश्चित रूप से ईश्वर के बाद मनुष्य को ही अपने केन्द्र में रखकर चला। भक्ति काव्य के विकास के बारे में रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि, "भक्ति काव्य के विकास के पीछे बौद्ध धर्म का लोक–मूलक रूप है और प्राकृतों के श्रृंगार–काव्य की प्रतिक्रिया है तो इस्लाम के सांस्कृतिक आतंक से बचाव की सजग चेष्टा भी है।"[1] लोक रूचि के अनुसार ही इस काव्य में निर्गुण ओर सगुण दोनों भावों की उपासना का दिग्दर्शन है व्यक्ति अनी भावना व श्रद्धानुसार जिस भाव अथवा मार्ग पर अधिष्ठित होना चाहे, यह उसका चयन था। निर्गुण और सगुण का अन्तर वाह्यात्मक ही था, आंतरिक स्थिति में दोनों का ही परम लक्ष्य अविनाशी ईश्वर था। भक्तिकालीन हिन्दी कवियों में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, रसखान, रहीम आदि प्रमुख है।

मध्यकाल की एक युगान्तरकारी महान घटना भक्ति के आन्दोलन का उद्भव एवं प्रसार हैं इस आन्दोलन ने भारत के जन–मन को न केवल उद्वेलित किया अपितु नये ढंग से सोचने समझने के लिए प्रेरित भी किया। इस आन्दोलन के महत्व को रेखांकित करते हुए डा0 शिव कुमार मिश्र ने उचित टिप्पणी की है–"इस आन्दोलन में पहली बार राष्ट्र के एक विशेष भूभाग के निवासी तथा कोटि–कोटि साधारण जन ही शिरकत नहीं करते, समग्र राष्ट्र की शिराओं में इस आन्दोलन की ऊर्जा स्पन्दित होती है, एक ऐसा जबर्दस्त ज्वार उफनाता है कि उत्तर दक्षिण, पूर्व पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते है। सब एक–दूसरे को प्रेरणा देते है, एक दूसरे से प्रेरणा लेते हैं, और मिलजुल कर भक्ति के एक ऐसे विराट नद की सृष्टि करते है, उसे प्रवहमान बनाते हैं जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि–कोटि साधारण जन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं, अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्मविश्वास, जिन्दा रहने की, आत्म–सम्मान के साथ जिन्दा रहने की शक्ति पाते हैं।"[2]

---

1. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 33
2. डॉ0 शिवकुमार मिश्र–भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य, पृ० 11

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में जिसे हम सन्त काव्यधारा के नाम से जानते हैं, उसमें कबीर सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व लेकर सामने आये हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के व्यक्तित्व के विषय में जो टिप्पणी दी है वह कबीर के व्यक्तित्व की सम्पूर्णता को उद्‌घाटित कर देती है। उनका कथन है कि वे "सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग से दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय। वे जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे, इसलिए उनकी उक्तियाँ बेधने वाली और व्यंग्य चोट करने वाले होते थे।"[1] कबीर की भाषा 'सधुक्कड़ी है। यात्राएं कर–कर के उपदेश करने के कारण वे बोलचाल की सहज भाषा को ही अपना श्रेष्ठ–प्रभावी अस्त्र बना कर चले। मुहावरे लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग उनके काव्य में देखने को मिलता है। कबीर के काव्य मे प्रतीक मुख्यतः चार क्षेत्रों से लिए गए हैं–जीवन–जगत से, हस्तकला उद्योग से, प्रकृति से , और नाथपंथी योगियों से। कलाल, कुम्हार, ताना–बाना, सूत, चकवा–चकई, मृग चातक, मोती आदि उनके काव्य के बहुप्रयुक्त प्रतीक हैं। उलटबाँसियों का प्रयोग कबीर की विशेषता है। उन्होंने धार्मिक आडम्बरों, जातिभेद, वर्णभेद और मिथ्याडम्बरों का विरोध किया और जनसामान्य के विकास, उत्थान और बौद्धिक स्तातंत्र्य पर बल दिया। कबीर ने भगवान के नाम पर पाखंड रखने वालों को कभी छूट नहीं दी। गुमराह लोगों की गलती दिखाने में उन्हें एक तरह का रस मिलता था। व्यंग्य करने में उन्हें जैसे तृप्ति मिलती थी। निम्नलिखित पद में गंगा नहाने वालियों की कैसी कसकर खबर ली गयी है–

"चली है कुलबोरनी गंगा नहाय।
सतुवा कराइन बहुरी भुँजाइन, घूँघट ओटे भसकत जाय।
गठरी बाँधिन मोटरी बाँधिन, खसम के मूड़े दिहिन धराय।
बिछुवा पहिरिन औंठा पहिरिन, लात खसम के मारिन धाय।
गंगा न्हाइन जमुना न्हाइनउ नौ मन मैल लिहिन चढ़ाय।

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ० 134

पाँच–पचीस कै धक्का खाइन, धरहुँ की पूँजी आई गँवाय।
कहत कबीर हेत कर गुरू सों, नहीं तोर मुकुती जाइ नसाय।"[1]

कबीर दास जी ने अंधश्रद्धा का घोर विरोध किया और उस पर तीखा व्यंग्य किया है। लौकिक जीवन के उदारहणों से उन्होंने पारलौकिक जीवन की समस्याओं पर विचार किया है ग्राम्य जीवन तथा समाज में व्याप्त देशज शब्दों के प्रयोग से ग्रामीण जीवन में व्याप्त अंधविश्वास एवं आडंम्बर को जीवंत अभिव्यक्ति दी है।

कबीरदास जो आडम्बरों का खण्डन करने में अत्यन्त कठोर दिखते हैं, भगवान के प्रति आत्मसमर्पण के प्रसंग में आश्चर्य जनक रूप से कोमल हो जाते है। दोहे में लोक जीवन का जीवंत चित्र उपस्थित है:

"कबीर कूता रांम का, मुतिया मेरा नांउं।
गले रांक की जेवड़ी, जित खैचै तित जांउं।।"[2]

उनका मत है कि जो 'भाव भक्ति' से हरि की आराधना नहीं करता वह जन्म मरण के चक्र से छुट्टी नहीं पाता। कबीर क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के धनी थे। उनके इस व्यक्तित्व में अनन्य भक्त, सच्चे प्रेमी तथा शुद्ध मानव के रूप के दर्शन होते हैं। भक्तिकालीन हिन्दी काव्य में और हिन्दू समाज में कबीर नवीन जागरण युग के अग्रदूत माने जाते हैं। आज कबीर जनता के ह्रदय में व्यक्ति के रूप में नही प्रतीक के रूप मे प्रतिष्ठित हैं। "उनके प्रेम और भक्ति में वह गलदश्रु भावुकता नहीं थी, जो जरा सी ऑच से ही पिघल जाय। यह प्रेम ज्ञान द्वारा नीति और श्रद्धा द्वारा अनुगमित था। वियोग की बात भी उसी मौज से कह सकते थे जिस तरह संयोग की। उनका मन प्रेम रूपी मदिरा से मतवाला था, वह ज्ञान के महुए और गुण से बनी थी, इसीलिए अन्धश्रद्धा, भावुकता और हिस्टीरिक प्रेमोन्माद का उसमें एकान्त अभाव था।..............सिर से पैर तक वे मस्त मौला थे। बेपरवाह, दृढ़ उग्र।"[3]

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ० 135
2. डॉ0 पारसनाथ तिवारी–कबीर–संग्रह–संजीवनी, पृ० 47
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० 93–94

कबीर दास फाग–लीला का आनंद अनुभव कर चुके है। उनकी कविताओं में हम ग्राम्य जीवन तथा प्रकृति की जीवंत अभिव्यक्ति पाते हैं। फागुन की ऋतु नजदीक आ रही है। प्रियतम के रंग डालने से अपने–आपको भूला हुआ भक्त व्याकुल भाव से सोचने लगता है–हाय वह सुख क्या मिल सकेगा? धन्य हैं वे जो प्रिय के साथ एकमेक होकर फाग खेलती हैं। प्रेम–दीवानी प्रेमिका उसे अलग से कैसे समझाए? वह उसी में समा गई है,–तन्मय हो गयी है। कबीर दास द्वारा अनुभव किये गये फाग–लीला पर हम विश्वास कर सकते हैं कि वह फाग साधारण फाग नहीं हैं। वह कहने की चीज नहीं अनुभव करने की चीज है'– 'अकथ कहानी'– विरलों के नसीब में इस परम सुख का अनुभव बदा है:

"ऋतु फागुन नियरानी हो,
कोई पिया से मिलावे।।
सोई सुंदर जाकों पिया को ध्यान है,
सोई पिया की मनमानी,
खेलत फाग अंग नहिं मोड़े,
सतगुरू से लिपटानी।
इक–इक सखियाँ खेल घर पहुँचीं,
इक–इक कुल अरूझानी।
इक–इक नाम बिना बहकानी,
हो रही ऐंचातानी।।
पिय को रूप कहाँ लगि बरनौं,
रूपहिं माहिं समानी।
जो रँग रँगे सकल छवि छाके,
तन–मन सबहिं भुलानी।
यों मत जाने यहि रे फाग है,
यह कछु अकथ–कहानी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो
यह गति विरलै जानी।।"[1]

कबीर का समाज दर्शन एवं लोक चेतना तत्कालीन सामाजिक कुप्रथाओं एवं दोषों की आलोचना मात्र नहीं था बल्कि इस आलोचना के मूल में उनकी समाज सुधार की भावना विद्यमान थी। वे इन्हीं आलोचनाओं के द्वारा तत्कालीन

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–कबीर–, पृ० 142

समाज को एवं जनमानस को यह अनुभव कराना चाहते थे कि वे जिन्हें धर्म समझकर उनका पालन करते जा रहे हैं वह वास्तव में धर्म के नाम पर आडम्बरों का पोषण करना मात्र है। वह समाज की विषमताओं को दूर कर सामाजिक समता की स्थापना करना चाहते थे। समाजिक सुव्यवस्था उनका लक्ष्य था इसके माध्यम से उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता की स्थापना का सपना देखा तथा लोक जीवन में उच्च मानवीय मूल्यों एवं आपसी सौहार्द्र की स्थापना का सशक्त प्रयास किया। जायसी प्रेमाख्यानक–काव्य–परम्परा और भक्ति काल के श्रेष्ठ कवि हैं। प्रेमाख्यान–काव्य–परम्परा में लोककथाओं के माध्यम से ही अलौकिक प्रेम की व्यंजना का विधान किया गया है। प्रेमाख्यानक कवियों ने भारतीय समाज और संस्कृति से सम्बद्ध कथाओं को अपने काव्यों में आधार रूप से प्रयुक्त किया है। सूफी प्रेमाख्यानों में जीवन के लोकपक्ष एवं हिन्दू संस्कृति का वर्णन गहराई से हुआ है। सर्वसाधारण के अंधविश्वास, मनौतियाँ, जादू–टोना, लोकोत्सव, लोक–व्यवहार, तीर्थव्रत, सांस्कृतिक वातावरण और हिन्दू जीवन के विविध पक्षों का चित्रण सभी काव्यों में सफलता पूर्वक चित्रित किया गया है। जायसी का 'पदमावत' भी इसका अपवाद नहीं है। पारिवारिक जीवन को देखें तो जायसी ने हिन्दू परिवारों में व्याप्त अनेक संस्कारों को लोक से ग्रहण किया है। उनके बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि: "इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।"[1]

लोक में व्याप्त धार्मिक जीवन को जायसी बहुत शूक्ष्मता से ग्रहण करते हैं हिन्दुओं की विविध मान्यताओं, विश्वासों आदि से भी वे परिचित थे। हिन्दू देवी–देवताओं की साज–सज्जा तक उनकी पैठ थी–

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 56

"ततखन पहुँचे आइ महेसू।
बाहन बैल, कुस्टि कर भेसू।।
काँथरि कया हड़ावरि बाँधे।
मुंड–माल और हत्या काँधे।।
सेसनाग जाके कंठमाला।
तनु भूभति, हस्ती कर छाला।।"[1]

भारतीय पर्व और त्यौहार भी जायसी ने वर्णित किये हैं। जिनका लोक में एक उल्लासकारी अवदान होता है। बसंत पंचमी होली, दीवाली, हरियाली तीज आदि का वर्णन उन्होंने वैसे ही उल्लास और उन्मादकारी रूप में किया है। वर्षा ऋतु आने पर यदि कामिनी के पास उसका पति हो तो उसे सावन और भादों के महीने सुहावने लगते हैं। पद्मावती इसी ऋतु के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। क्योंकि पावस ऋतु सर्वाधिक कामोंद्दीपक मानी गयी है। हरियाली से ढँक जाने के कारण आकाश का रूप सुन्दर लगने लगता हैं कोयल कूक उठती है। बगुलों की पंक्तियाँ उडने लगती है। स्त्रियाँ अपने–अपने घरों से बाहर निकल पड़ती हैं मानों बीरबहूटियाँ चली जा रही हों। कवि ने ग्राम्य परिवेश वहाँ की सुनहली प्रकृति तथा जनजीवन के मनोहारी रूप का जीवन्त चित्र खींचा है काव्य पंक्तियॉ निम्नवत् हैं–

"रितु पावस बरसै, पिउ पावा। सावन भादौं अधिक सोहावा।
पदमावति चाहति ऋतु पाई गगन सोहावन, भूमि सोहाई।।
कोकिल बैन, पाँति बग छूटी। धनि निसरी जनु बीरबहूटी।।
चमक बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना।।
रँग–राती पीतम सँग जागी। गरजे गगन चौंकि गर लागी।।
सीतल बूँद, ऊँच चौपारा। हरियर सब देखाई संसारा।।
हरियर भूमि, कुसुँभी चौला। औ धनि पिउ सँग रचा हिंडोला।।
पवन झकोरे होइ हरष, लागे सीतल बास।
धनि जानै यह पवन है, पवन सो अपने पास।।"[2]

जायसी के काव्य में प्रकृति एवं ग्राम्य जीवन के चित्रांकन के विषय में डॉ0 शिवकुमार मिश्र का कहना है कि: "अवध की प्रकृति अपनी सम्पूर्ण सुषमा

---

1. सम्पादक : राजनाथ शर्मा–जायसी–ग्रन्थावली, पृ० 274
2. वही, पृ० 436

के साथ 'पदमावत्' में मूर्त हैं। नागमती के वियोग वर्णन में उसका घनीभूत रूप उभर कर सामने आया है अवध की एक--एक वनस्पति ही नहीं, पशु–पक्षी भी वहॉ मौजूद हैं। वहाँ के फल–फूल, वहाँ के लोगों द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला अनाज..........एक–एक औजार, विशेषतः कृषि के औजार सब जायसी के 'पदमावत' में हैं।..........कौन पक्षी कब बोलता है, कैसे बोलता है, उसकी बोली मीठी है अथवा रूखी जायसी सब जानते हैं अवध के तिथि त्यौहार, खेलकूद, उत्सव, पर्व वहाँ के निवासियों के सुख–दुःख, उनके कष्ट–क्लेश, सब से जायसी की निपट आत्मीयता है। अवध प्रदेश में ऋतुएँ कैसे आती हैं, और उनका क्या रूप होता है यह जायसी के बारहमासे से स्पष्ट है। इन ऋतुओं के समय समान्य जनजीवन की क्या दशा होती है यह भी वहॉ हम देखते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि लोक जीवन की एक–एक लय को जायसी ने बड़ी आत्मीयता से पकड़ा और उभारा है।"[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसी की ग्राम्य–दृष्टि अधिकतर स्थितियों की व्यंजना के लिए ठेठ ग्रामीण जीवन के ही उपमान लाई है उन के सम्पूर्ण काव्य में ग्रामीण परिवेश का स्पन्दित चित्र पाया जाता है।

प्रकृति का भरपूर उपयोग जायसी ने भाव–व्यंजना में किया हैं नागमती का वियोग वर्णन इसका उदाहरण है। इसी के अंतर्गत उनका प्रसिद्ध बारहमासा है जिसमें गँवई प्रकृति अपने सारे रूपों के साथ उजागर हुई है। यह बारहमासा पद्मावत में नागमती वियोग के अन्तर्गत सबसे प्रभावशाली और जायसी की कवि दृष्टि, उनके बारीक निरीक्षण का प्रमाण है नागमती के विरह–व्यथित हृदय की मार्मिक व्यंजना का चित्र दृष्टव्य है–

"कुहुकि–कुहुकि जस कोइल रोई रकत–आँसु घुंघुची बन बोई।।
भइ करमुखी नैन तनराती। को सिराव? बिरहा–दुख ताती।।
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनवासी। तहँ–तहँ होई घुँघचि कै रासी।
बूँद बूँद महँ जानहँ जीऊ। गुँजा गूँजि करै 'पिउ पीऊ'।।
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते।।

---

1. डॉ0 शिवकुमार मिश्र–भक्ति–आन्दोलन और भक्तिकाव्य पृ० 104

राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ?।।
देखौ जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता?।।
नहिं पावस ओहि देसरा नहि हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत।।"[1]

कवि ने नागमती की विरहावस्था का अत्यन्त मार्मिक और करूण वर्णन किया है। दृष्टव्य है कि जायसी के यहाँ गँवई प्रकृति की ही प्रधानता है। उसी के कार्य व्यापारों का अंकन है। आकाशीय प्रकृति की छटाएँ भी उनके यहाँ हैं परन्तु गँवई दृष्टि से देखी हुई। प्रकृति के कोमल,रौद्र, सुन्दर, भव्य और दाहक सभी प्रकार के चित्र उनके यहाँ हैं। जायसी का सारा काव्य प्रकृति के नाना रूप व्यापारों से भरा हुआ है।

सगुणोपासक कृष्णभक्त कवियों की परम्परा में सूरदास का स्थान अनन्य है। भक्तिभावना और कृष्ण लीलाओं के वर्णनों में उनकी अंतरात्मा पूर्णतः रमी हुई दिखायी देती है मुख्यतः कृष्ण के लोकरंजक रूप का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने, सख्य, माधुर्य और वात्सल्य भाव की भक्ति की। सूदरास जी के भक्ति–काव्य का एक बड़ा अंश वात्सल्य–भाववर्णन से परिपूर्ण है। सूर का वात्सल्य–वर्णन कदाचित् दुनिया के सर्वश्रेष्ठ बालचित्रों का संग्रह है। कृष्ण–लीला के वर्णन के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि : "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूषधारा, जो काल की कठोरता में दब गयी थी, अवसर पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुँजों के बीच फैलकर मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।"[2] गृहस्थ–जीवन का समरस परिवेश जो हमारी सांस्कृतिक विशिष्टता है उसके बारे में प्रो0 रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि : "गृहस्थ घर की पूरी दिनचर्या

---

1. सम्पादक : राजनाथ शर्मा–जायसी–ग्रन्थावली, पृ० 466
2. संपादक : कृष्णानंद– त्रिवेणी पृ० 46

बालकृष्ण के निमित्त से अंकित हुई है सूरसागर में। फिर सूरदास की भाषा में बोलचाल का संस्कार ऐसा गहरा है जिससे उनका गृहस्थ–जीवन का चित्रण अपने आप में प्रामाणिक दिखता है। कुल मिलाकर, सूर इस बाल्य जीवन के अद्भुत चितेरे हैं। कला और सहजता का विलक्षण संयोग इस चित्रण में हुआ है।"[1] सूर द्वारा किये गये कृष्ण के बालरूप तथा नारी के मातृत्व एवं गार्हस्थ धर्म के चित्रण के विषय में प्रो0 शिवकुमार मिश्र का कहना है कि: "सूर ने कृष्ण के बाल रूप को जहाँ भी और जितना भी उभारा है, प्रायः हमेशा और हर जगह कृष्ण के साथ यशोदा भी हैं। 'यशोदा हरि पालने झुलावै' 'सिखवत चलन जशोदा मैया' 'मुख छवि देखि हो नंदघरनि,' 'हां लगि नेकु चलौ नंदरानी' आदि देरों पद माता और पुत्र के इस चिरंतन सान्निध्य को गरिमा प्रदान करते हैं।........ नारी के मातृत्व तथा गार्हस्थ धर्म की गरिमा से अभिभूत हुए बिना इस प्रकार के पदों की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वात्सल्य की एक–एक मनों दशा को, शिशु मनोविज्ञान की एक–एक बारीकी को, माता–शिशु तथा पिता और शिशु के सम्बन्धों की एक–एक रेखा को, विषय की सीमा में, जितनी गहराई, जितनी तन्मयता तथा जितने विस्तार से लगभग आत्मविभोर होकर सूर ने चित्रित किया है, उसे मात्र पुष्टिमार्गीय परंपरा का निर्वाह नहीं कहा जा सकता।"[2]

सूर की भक्ति, कृष्ण चरित्र के भावात्मक चित्रों में वात्सल्य–भाव के चित्रण में श्रेष्ठतम् रूप से अभिव्यक्त हुई है। बाल–मनोभावों और मातृहृदय की कोमलतम अनूभूतियों के माध्यम से सूर ने अपने भक्तिभाव को जनसामान्य के लिए सुलभतम बना दिया। बाल जीवन की प्रत्येक भावना का जैसा शूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण सूर ने किया, वह आज तक उन्हें की मौलिक सम्पत्ति बना हुआ है। वात्सल्य वर्णन की मोहक पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

---

1. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी काव्य–संवेदना का विकास, पृ० 63
2. डॉ0 शिवकुमार मिश्र–भक्ति–आन्दोलन और भक्तिकाव्य, पृ० 134–35

"जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ–सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निदँरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहें नहिं बेगहि आवै, तोको कान्ह बुलावै
कबहुँक पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन है, रहि, करि करि सैन बतावै।
इहिं अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमतिमधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर–मुनि दुरलभ, सो नंद भामिनि पावै।।"[1]

सूर ने बाल जीवन की विविध मानसिक अवस्थाओं के बहुत सुन्दर चित्र खींचे है। कृष्ण का जन्म, मॉ यशोदा का वात्सल्य, कृष्ण का घुटने चलना, मक्खन खाना, तुतलाकर बात करना, खेलने में झगड़ना आदि। बालक कृष्ण और माँ यशोदा, सूर की संवेदनशील कलात्मकता से संयुक्त होकर सार्वभौम हो गये हैं।

बाल सुलभ जिज्ञासा का सहज स्वाभाविक चित्रण कवि ने बहुत सुन्दर ढंग से किया है–

"मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोंहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं, है लाँबी–मोटी।
काढ़त–गुहत न्हवावत जैहै नागिनि सी भुइँ लोटी।
काचौ दूध पियावति पचि–पचि, देति न माखन–रोटी।
सूरज चिरजीवौ दोउ भैया, हरि–हलधर की जोटी।।"[2]

सूर ने चाहे वात्सल्य वर्णन किया हो या साहचर्यजन्य प्रेम और वियोग का–वे आपादमस्तक उस भाव–चित्र में स्नात हुए दिखायी पड़ते हैं सूर का संयोग वर्णन क्षणिक घटना नहीं बल्कि जीवन की संगीतमय प्रेम की धारा है। इस विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि : "किसी की रूप चर्चा सुन या अकस्मात किसी की एक झलक पाकर, हाय–हाय करते हुए इस प्रेम का आरम्भ नहीं हुआ है। नित्य अपने बीच चलते–फिरते, हँसते–बोलते, वन में गाय चराते, देखते–देखते गोपियाँ कृष्ण में अनुरक्त होती हैं और कृष्ण गोपियों

---

1. सम्पादक : डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा–सूरसागर सार सटीक, पृ० 50
2. वही, पृष्ठ 58–59

में। इस प्रेम को हम जीवनोत्सव के रूप में पाते हैं, सहसा उठ खड़े हुए तूफान या मानसिक विप्लव के रूप में नहीं, जिनमें अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों और विघ्नबाधाओं को पार करने की लम्बी–चौड़ी कथा होती है। सूर के कृष्ण और गोपियाँ पक्षियों के समान स्वच्छंद हैं, ये लोकबन्धनों से जकड़े हुए नहीं दिखाये गये है। जिस प्रकार के स्वच्छंद समाज का स्वप्न अंगरेज कवि शेली देखा करते थे, उसी प्रकार का यह समाज सूर ने चित्रित किया है।"[1]

सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूपलिप्सा और साहचर्य दोनों का योग है। बालक्रीड़ा के सखा–सखी आगे चलकर यौवन क्रीड़ा के सखा–सखी हो जाते हैं। राधा और कृष्ण के विशेष प्रेम की उत्पत्ति सूर ने रूप के आकर्षण द्वारा ही करायी है–

"खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।
× × × × ×
गए स्याम रबि–तनया कैं तट, अंगलसति चंदन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी।
× × × × × × × ×
सूर स्याम देखत हीं रीझे, नैन–नैन मिलि परी ठगोरी।।'[2]
"बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी।
काहे कौं हम ब्रज–तन आवतिं, खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनत रहति स्रवननि नँद–ढोटा, करत–फिरत माखन–दधि–चोरी।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक–सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी।।[3]

खेल ही खेल में प्रेम जैसी भावना पैदा हो गयी। प्रेम का आरंभ उभय पक्ष में सम है सूर प्रेम और अनुकम्पा के साथ–साथ मधुरारति की अभिव्यक्ति में अधिक तन्मय रहे हैं उनकी यह तल्लीनता और तन्मयता गोपियों की दामपत्यभाव की भक्ति के निरूपण में चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई दिखायी देती है।

---

1. संपादक : कृष्णानंद–त्रिवेणी, पृ० 52
2. संपादक : डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा–सूरसागर सार सटीक, पृ० 146
3. वही, पृष्ठ 146

सूरदास के वात्सल्य तथा शृंगार चित्रण एवं लोक सम्पृक्ति के विषय में डॉ0 शिव कुमार मिश्र का कहना है कि– "वात्सल्य तथा शृंगार के इस चित्रण में ब्रज की लोक संस्कृति तथा लोकजीवन को जिस गहराई तथा विस्तार से सूर ने प्रस्तुत किया है वह सूरसागर एवं सूर काव्य की ही नहीं, समूची हिन्दी कविता की अमूल्य निधि है यह एक ऐसी ग्रामीण संस्कृति है जो अपनी जीवंतता में अनुपम है।"[1]

कृष्ण मथुरा के राजभवन में ऐश्वर्य भरी जिन्दगी बिता रहे हैं पर उन्हें ब्रज में ग्वालों व गोपियों संग बिताए गये वे क्षण याद आ रहे हैं और उनके मन में कसक पैदा कर रहे हैं। अतीत के उन सुखद क्षणों को याद करते हुए वे ऊधौ से कहते है–

"ऊधौ मोंहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कगरी, अरू कुंजनि की छाहीं।
वे सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल–बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाहीं।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं।
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहै मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं।।"[2]

संस्कृति का यथार्थ–रूप हमें ग्रामीण जीवन में ही देखने को मिलता है। सूरदास के काव्य में ब्रज–संस्कृति का विविध और व्यापक रूप देखने को मिलता है सूर का सम्पूर्ण काव्य ग्राम्य परिवेश एवं वहाँ की मनोहारी प्रकृति को ही जीवंत रूप में अभिव्यक्त करता है।

तुलसीदास भक्तिकाल की 'रामभक्ति काव्यधारा' के प्रतिनिधि कवि हैं। हिन्दी में रामकाव्य की एक विस्तृत परम्परा मिलती है उत्तरी भारत में तो सामान्य व्यक्ति की झोपड़ी से लेकर गगनचुम्बी प्रासादों तक में तुलसी के साहित्य को विशेषतः 'रामचरितमानस' असीम श्रद्धा व आदर प्राप्त है।

---

1. डॉ0 शिव कुमार मिश्र–भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य पृष्ठ 139
2. संपादक : डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा–सूरसागर सार सटीक, पृ० 336

'रामचरितमानस' तुलसी की मनीषा का निचोड़ है। वह मध्यकाल का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। रामचरित मानस के निर्माण में तुलसी के हृदय का द्वंद्व और तत्कालीन सामाजिक परिवेश में व्याप्त समस्याओं और प्रश्नों का समाधान प्रमुख रहा है तुलसीदास जी के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने विचार कुछ यूँ प्रकट करते हैं: "अपने दृष्टि विस्तार के कारण ही तुलसीदासजी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदय मंदिर में पूर्णप्रेम प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं। भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्ही महानुभाव को। और कवि जीवन का कोई एक पक्ष लेकर चले हैं– जैसे, वीरकाल के कवि उत्साह को, भक्तिकाल के दूसरे कवि प्रेम और ज्ञान को, अलंकार काल के कवि दांपत्य प्रणय या श्रृंगार को। पर इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश करती है दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यन्त उज्जवल छटा उसमें वर्तमान है।"[1] तुलसी दास की लोकमंगल की भावना एवं समन्वयवादी दृष्टि को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कुछ इस प्रकार व्याख्यायित किया है: "भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय समाज में नाना भाँति की परस्पर–विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ आचारनिष्ठा और विचार–पद्धतियाँ प्रचलित हैं।.तुलसीदास स्वयं नाना प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे। ....गाँव वालों के सोहर आदि जितनी प्रकार की छंद–पद्धतियाँ उन दिनों लोक में प्रसिद्ध थीं, सबको उन्होंने अपनी असाधरण प्रतिभा के बल पर अपने रंग में रँग दिया। लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय ब्राह्मण और चांडाल का समन्वय, पांडित्य और

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 75

अपांडित्य का समन्वय– 'रामचरित–मानस' शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है।"[1]

रामचरित मानस में वर्णित ग्रामवासियों और जनजातियों की प्रेमभावना को डॉ0 बच्चन सिंह ने कुछ इस प्रकार व्यारव्यायित किया है: "मानस के ग्रामवासियों और जनजातियों के भोले प्रेम को देखकर हम मनुष्यता की बुनियाद पहचानते हैं जिसे पूँजीवादी सभ्यता लगभग लील चुकी है। गाँव अपने संगीत का कँपन खो चुके हैं, सरलता का छंद तोड़ चुके हैं। ऐसी स्थिति में बनमार्ग में पड़ने वाले गाँवों की स्त्रियों का राम, लक्ष्मण और सीता के प्रति निर्हेतुक प्रेम देखकर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है। कोल, किरात, भील, निषाद जैसी अस्पृश्य जातियाँ राम के लिए फलों का ढेर लगा देती हैं। पलकों के पाँवड़े बिछा देती हैं। शबरी के जूठे बेर खाकर राम वर्णाश्रम की रीढ़ तोड़ देते हैं।"[2] राम, लक्ष्मण, सीता के प्रति ग्रामवासियों के अपार स्नेह एवं प्रेम को कवि ने बहुत सुन्दर शब्दों में वर्णित किया हैं–

"सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई।।
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाजु बिसारी।।
राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी।
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा।।

× × × × × × × × ×

रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे।
एक देखि बटछाँह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात।।"[3]

राम जानकी के अयोध्या से निकलने का दृश्य वर्णन करने में गोस्वामी जी ने कुछ उठा नहीं रखा। उनके वियोग में पशु–पक्षी भी बिकल हैं। ग्रामीण जनों द्वारा प्रदर्शित आत्मीयता भाव एवं प्रेम हमारी ग्रामीण सभ्यताकी विरासत है। जो मानव–मानव के प्रति प्रेम पर आधारित है।

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० 98–99
2. डॉ0 बच्चन सिंह–हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 144
3. श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी विरचित–श्रीरामचरितमानस (अयोध्याकाण्ड : दोहा संख्या 114), पृ० 227–28

तुलसीदास जी लोकजीवन की मधुर–तिक्त अनुभूतियों के मुग्ध और सजग गायक हैं। लोक जीवन की नाना छवियों को उनकी रचनाओं में पूरी जीवंतता में देखा जा सकता है उनकी कविता में आत्मीयता के बड़े जीवित और जागृत संदर्भ हैं। कोल, भीलों का राम के प्रति प्रेम भाव हमारी ग्रामीण सभ्यता में व्याप्त अतिथि के प्रति सम्मान और समर्पण भाव को अभिव्यक्त करता है। 'अतिथि देवो भव' की हमारी सांस्कृतिक विशेषता यहाँ साकार हो उठी है–

"कोल किरात भिल्ल बनवासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी।।
भरि भरि परन कुटी रूचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी।।
सबहिं देहिं करि विनय प्रनामा। कहि–कहि स्वाद भेद गुन नामा।।
देहिं, लोग बहु मोल न लेही। फेरत राम दोहाई देहीं।।" [1]

'मानस' का उद्देश्य है एक नयी सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था जिसके मूल में प्रेम और सद्भावना निहित है। इस संदर्भ में डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि: "एक स्तर पर ईश्वर और मनुष्य की एकरूपता स्वीकारने के ही कारण 'रामचरितमानस' का पूरा परिवेश, दैवी हस्तक्षेप के बीच–बीच में आने के बावजूद, पूरी तरह मानवीय है काव्य में इस नितान्त मानवीय आधार–भूमि का एक कारण–और प्रमाण भी– यह है कि यहाँ सामान्य परिवार समूची रचना के केन्द्र में है। परिवार भरतीय संदर्भ में व्यक्ति और समाज को जोड़ने वाली अनिवार्य कड़ी है। व्यक्ति को सामाजिक मूल्यों का प्रशिक्षण देने की पहली पाठशाला जैसे परिवार है। स्नेह सहिष्णुता, सेवा के मूल्य वह सर्वप्रथम यहीं सीखता है।"[2]

गोस्वामी जी पंडित थे कला–विदग्ध थे किन्तु भीतर कहीं एक नितान्त गँवई मन के भी स्वामी थे। उनके गँवई संस्कार उनकी भाषा का गँवई लहजा, उसमें रची–पगी लोक रस की मिठास उनकी लोकप्रियता का राज है। सुख अथवा दुःख के अवसरों पर जैसी उक्तियाँ साधारण जनों के मुँह से सहज ही फूटती हैं, गोस्वामी जी उनकी अंतरंगता से वाकिफ थे। एक तरफ जहाँ वे

1. श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी विरचित–श्रीरामचरितमानस (अयोध्याकाण्ड), पृष्ठ 284
2. डॉ0 रामस्वरूप–चतुर्वेदी–हिन्दी काव्य–संवेदना का विकास, पृ० 77–78

लोकमंगल और आदर्श दृष्टि से युक्त थे वहीं दूसरी तरफ समाज और संस्कृति के प्रति नितान्त यथार्थवादी दृष्टि से संवलित थे। त्राहि–त्राहि करता समाज उनके यहाँ मूर्तिवंत है–

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख,
बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सिद्यमान सोच बस कहैं
एक एकन सों–'कहाँ जाई का करी'।"[1]

विपत्ति तथा दुःख के क्षणों में साधारण ग्रामीण जनों के मुख से 'कहाँ जाइं, काकरी' की यह विवशता तथा निराशा गर्भित उक्ति आसानी से सुनी जा सकती है।

भक्ति आन्दोलन मध्यकालीन भारत में उदित भक्तिपरक भावनाओं का प्रबल आवेग था जिसने भारतीय समाज और संस्कृति में गहरे पैठे अंधविश्वासों, दोषों, कुरीतियों रूढ़ियों और कर्मकाण्डों की जड़े हिलाकर रख दी। यह अमानवीय समाज व्यवस्था के प्रति सामान्य जन के सात्विक रोस तथा उसकी दुर्दम जिजीविषा की भावात्मक अभिव्यक्ति था। भक्ति कालीन हिन्दी कविता की मूलभूत विशेषता यह है कि वह संसार को असार या मिथ्या नहीं मानती बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति उसमें गहरी रागात्मकता पायी जाती है इस कविता का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम ग्राम्य जीवन तथा लोक संस्कृति का उद्घाटन है। भक्तिकालीन कवि स्वयं उसी लोक संस्कृति की उपज थे। इसकी मूल संवेदना कृषक जीवन एवं प्रकृति से जुड़ी हुई है। अवध की लोक–संस्कृति जहाँ तुलसीदास और जायसी में अपनी सारी विशेषताओं के साथ मूर्त हुई है, वहाँ सूरदास में ब्रज प्रदेश की लोक–संस्कृति अपनी सारी मधुरता के साथ विद्यमान है। मीरा के पदों में राजस्थान की लोक–संस्कृति के स्वर गूँजे हैं। इनके पदों में लोकगीतों की सी मिठास है, इनके छन्दों और काव्य–रूपों का लोक मन से सहज रिश्ता है। जो ग्राम्य जीवन एवं वहाँ के प्राकृतिक परिवेश को चित्रित करने में पूर्णतया सफल रहा है।

---

1. डॉ0 शिवकुमार मिश्र–भक्ति–आन्दोलन और भक्तिकाव्य, पृ० 165

(ग) रीतिकालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध :

रीतिकालीन साहित्य की शृंगारिकता और कला, रस, अलंकार आदि के पूर्ण विकास के लिए उस समय की सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ पूरी तरह अनुकूल थीं कृषक और मजदूर वर्ग पूरी तरह शोषित था। सेनाओं के प्रयाणों, युद्धों, अतिवृष्टि, सूखे आदि के कारण इस वर्ग की आय के एक मात्र साधन कृषि की भी हानि होती रहती थी। रीतिकाव्य में जहाँ शृंगार की प्रधानता है, आचार्यत्व–प्रदर्शन की भावना है और अलंकारों के प्रति मोह है, वहीं एक ऐसा पक्ष भी है जो इस काव्य को शृंगारेत्तर भावों से अलग कर देता है यही कारण है कि अनेक कवियों ने नीति और भक्ति से युक्त रचनाऐं भी प्रस्तुत की हैं। रीतिकालीन भक्ति, भक्ति तो है, किन्तु उसके पीछे शृंगारिकता की प्रेरणा ही अधिक है। इस युग के कवियों की नारी–भावना पूर्ण रूप से रूग्ण थी। कवि का नारी विषयक दृष्टिकोण सामन्तीय था। वे मानते थे कि नारी समाज की चेतन इकाई न होकर एक उपकरण मात्र है। हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल,जो रीतिकाल के नाम से अभिहित किया जाता है, लोक–जीवन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय नहीं कहा जा सकता है इस काल में शृंगार वर्णन की बहुलता को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त किया है: ''वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इसकाल को रस के विचार से कोई शृंगार काल कहे तो कह सकता है शृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रूचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।''[1] राजप्रासादों मं व्याप्त शृंगारिकता और विलासिता की तरफ संकेत करते हुए डॉ0 नगेन्द्र कहते हैं: ''सम्राट के महलों में सुन्दरी के साथ सुरा का भी उन्मुक्त व्यापार था। मदिरापान उस समय सबसे भयंकर व्यसन था। हिन्दू और मुसलमान समान रूप से धार्मिक निषेधों का उपहास करते हुए मदिरा का निर्बाध

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 133

सेवन करते थे। अमीरों और राजाओं के महलों में श्रृंगारिकता का नग्न नृत्य होता था.........समस्त देश में वासना का सागर ऐसे प्रबल वेग से उमड़ रहा था कि शुद्धिवादी सम्राट औरंगजेब के सभी निषेध–प्रयत्न उसमें बह गए।"[1]

रीतिकालीन काव्य अधिकांशतः दरबारों में लिखा गया, अतः उनकी रूचि का ध्यान रखकर काव्य रचने वाले कवियों में श्रृंगारपरकता अनिवार्य थी। उधर भक्ति में धार्मिकता और लोकोन्मुखता का आवेश कम होने पर श्रृंगार बचा रहा। कवियों ने राधा–कृष्ण का नाम लेकर आश्रयदाताओं की श्रृंगार–लीलाओं का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। इस विषय में डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि: "हिन्दी रीति काव्य के विकास में कई चिंतन और कला–धाराओं का योगदान देखा जा सकता हैं संस्कृत का काव्यशास्त्र, प्राकृत–अपभ्रंश की श्रृंगारी और मुक्तक–परंपरा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य और उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित शास्त्रीय संगीत–इन सबका रचनात्मक संपर्क रीतिकाव्य में हुआ। यह स्वाभाविक था कि इन कवियों के लिए मौलिकता का एक क्षेत्र शूक्ष्म परिकल्पना का रह जाय। आश्रयदाता की प्रसंशा तथा श्रृंगार–वर्णन के समय बहुत बार यह परिकल्पना अतिरंजना के आवेश में ऊहा का रूप धारण कर लेती है।"[2]

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में उस समय की परिस्थितियों से प्रेरित और पुष्ट होकर जो प्रवृत्तियाँ सामने आयीं, उनमें श्रृंगारिकता, अलंकारिकता और आर्चायत्व–प्रदर्शन की प्रवृत्तियाँ प्रमुख थी। इनके अतिरिक्त नीति, भक्ति और वीर रस की बेधक कविताएँ भी लिखी गयीं। प्रकृति–निरूपण भी हुआ, किन्तु यह उद्दीपन रूप में ही अधिक हुआ। नारी के प्रति इस काल के कवियों की दृष्टि उपभोग–प्रधान रही। प्रेम का उदात्त पक्ष प्रायः उपेक्षित रहा सम्भोग परक और स्थूल पक्ष ही प्रधानतः कविता का विषय बना। हाँ, रीतिमुक्त कवियों ने यह अवश्य निरूपित किया कि "अति सूधों सनेह को मारग है"। रीतिमुक्त कवियों ने

---

1 डॉ0 नगेन्द्र–रीति–काव्य की भूमिका, पृ० 12

2. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 62–63

प्रेम की उदात्तता के साथ–साथ अपने सौन्दर्यबोध की शूक्ष्मता, प्रेमगत समर्पणशीलता, प्रकृति वर्णन, और विरहानुभूति की तीव्रता और स्वाभाविकता पर सर्वाधिक ध्यान दिया है। यही कारण है कि रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा रीतिमुक्त कवियों की कविता में अकृत्रिमता और लोकोन्मुखता अधिक है रीति बद्ध काव्य धारा के कवियों में केशव, देव, चिन्तामणि, भिखारीदास, कुलपति मिश्र प्रमुख हैं। रीतिमुक्त काव्य धारा में घनानन्द बोधा, ठाकुर, आलम आदि का विशेष महत्व है। तथा रीति सिद्ध काव्यधारा में एकमात्र कवि बिहारी हैं।

यदि बिहारी सतसई को केन्द्र में रखा जाय तो स्पष्ट लगता है कि बिहारी कालीन समाज अजीब निष्क्रियता, स्पंदनहीनता और स्वतन्त्र चेतना हीनता से ओत प्रोत था लगता ही नहीं कि उस समय समस्याएँ भी थीं जबकि समस्याऐं मुँह बाये खड़ी थी। बिहारी सतसई में समाज अथवा कहें कि लोकजीवन का जो स्वरूप हल्का सा झलकता है, वह देवर–भाभी के सम्बन्ध, पड़ोसियों के सम्बन्ध और सम्मिलित परिवार में नारी की स्थिति को ही दर्शाता है। कहीं–कहीं ईख, सन, बन और अरहर का नाम भर आता है। लोक–जीवन में और भी बहुत–सी बातें हैं किन्तु उनकी ओर रीति कवियों का ध्यान प्रायः नहीं गया है। मान अपमान को सहते हुए कविगण सामंतों सरदारों के प्रीत्यर्थ कविताएँ लिखते रहे, यह उनकी मजबूरी थी। इन्हीं बातों की तरफ इशारा करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह कहते हैं कि– "वस्तुतः इस काल का कवि अपने आश्रयदाताओं के भोगपरक जीवन को देखकरऔर उस प्रकार के जीवन को यश और सम्मान का कारण समझकर उसे कल्पना और वाग्वैदग्ध्य के बल पर अपनी चरमसीमा तक घसीट ले जाने के लिए उत्साहित होता था। वह उन सामंत सरदारों के भव्य भवनों, और ऐश्वर्यपूर्ण दिनचर्या का मादक चित्र खींचता था।"[1]

बिहारी रीतिकाल के एक ऐसे कवि हैं जिनकी कविताओं में ग्रामीण संस्कृति के प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव पाया जाता है, पर जाने–अनजाने उनमें ग्रामीण परिवेश एवं गँवई संस्कृति की अभिव्यक्ति हो ही गयी है। एक ओर

---

1. डॉ0 बच्चन सिंह–हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 182

वे ग्रामीण नायिका की माँसलता, गदराये यौवन और 'खरे उरोजनि' में गहरी अभिरूचि लेते हैं दूसरी ओर 'गँवारि' कहकर उनकी भर्त्सना भी करते हैं। अन्ततः बिहारी में भी ग्राम्य बोध किसी न किसी रूप में उनके हर दोहें में मौजूद है, चाहे नकारात्मक रूप मे ही सही। काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

"गदराने तन गोरटी, ऐपन–आड़ लिलार।
हूष्यो दै, इठलाइ, दृग करै गँवारि सुवार।।"[1]

नागर संस्कृति और ग्राम्य–संस्कृति में अलगाव हमेशा से मौजूद रहा है नगरवासी गॉव वालों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उन्हें 'गँवार' कहते हैं। बिहारी भी नागरिकों के सामने ग्रामीण जनों की हँसी उड़ाने में नहीं अघाते।

"चल्यौ जाइ, हयाँ को करै हाथिनु के व्यापार।
नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं धोबी, ओड़ कुँभार।।
वे न इहाँ नागर, बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गवँई–गाँव गुलाब।।"[2]

बिहारी लाल की सतसई, हाल की 'सत्तसई' से प्रभावित है जिसके बारे में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि "प्रेम और करूणा के भाव, प्रेमियों की रसमयी क्रीड़ाएँ और उनका घात–प्रतिघात इस ग्रन्थ में अतिशय जीवंत रूप में प्रस्फुटित हुआ है अहीर और अहीरिनों की प्रेम गाथाएँ, ग्राम–वधूटियों की श्रृंगार–चेष्टाएँ, चक्की पीसती हुई या पौधों को सींचती हुई सुन्दरियों के मर्मस्पर्शी चित्र, विभिन्न ऋतुओं का भावोत्तेजन आदि बातें इतनी जीवित इतनी सरस और इतनी हृदयस्पर्शी हैं कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट होता है।"[3]

रीतिकाव्य के अनतर्गत कहीं–कहीं सांस्कृतिक बिम्ब भी देखनें को मिलते हैं। इन कवियों ने बसन्त का वर्णन जमकर कया है। और उसी के साथ–साथ होली के त्यौहार, गुलाल की गारद और केसर के संदर्भ को भी संकेतित किया है।

---

1. श्री जगन्नाथ दास "रत्नाकर"–बिहारी रत्नाकर, पृ० 49
2. वही, पृष्ठ 202
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० 106

रीतिमुक्त कवियों ने अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति के कारण कुछेक स्थलों पर आनन्दोल्लास से भरकर लोकजीवन के कतिपय चित्र उतारे हैं। स्वच्छन्द काव्य धारा के कवि आलम की प्रकृतिपरक एवं ग्राम्य–चेतना से युक्त कविता दृष्टव्य है–

"कैधों मोर सोर तजि गए री अनत भाजि,
कैधों उत दादुर न बोलत हैं, ए दई।
कैधों पिक चातक, महीप काहू मारि डारे,
कैधों बकपाँति उत अंतगति है गई?
आलम कहै, हो आली! अजहूँ न आए प्यारे,
कैधों उत रीत विपरीत विधि ने ठई?
मदन महीप की दुहाई फिरिबे तें रही,
जूझि गए मेघ, कैधों बीजुरी सती भई?"[1]

घनानन्द रीतिमुक्त या स्वच्छन्द काव्यधारा के एक प्रमुख कवि है। घनानन्द हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट स्वच्छन्द प्रेमी कवि के रूप में विख्यात हैं। उनकी प्रेमानुभूति निश्छलताऔर निष्कपटता पर आधारित है। उनके प्रेम में आडम्बर एवं कृत्रिमता के लिए तनिक भी स्थान नहीं है। वे प्रेम के स्वाभाविक पुजारी थे। उनके प्रेम में स्वच्छन्दता तथा नैसर्गिकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का उनके बारे में कहना है कि– "प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीरपथिक तथा जवाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"[2]

घनानन्द प्रेम की यातना के कवि है। इसीलिए ब्रजनाथ ने कहा है–'समुझै कविता घन आनन्द की हिय ऑखिन नेह की पीर तकी।' प्रेम का ऐसा आवेग न ठाकुर में है न बोधा में। घनानन्द ने बिरह की पीड़ा की अभिव्यक्ति प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से भी की है कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

"कारी कूर कोकिला! कहाँ को बैर काढ़ति रो,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैंड़े परे पानी ये कलापि निसद्यौस ज्यौ ही,
चातक! घातक त्यौं ही तू हू कानि फोरि लै।
आनंद के घनप्रान–जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।

---

1. डॉ. बच्चन सिंह–हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 225
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 186

जौं लौं करैं आवन बिनोद–बरसावन वे,
तौ लौरे डरारे बजमारे घन घोरि लै।"[1]

घनानन्द का काव्य स्वतः– स्फुरित काव्य है। इसमें न तो कोई आरोपण है, न कृत्रिमता है, न चमत्कार–प्रदर्शन ही है वह प्रेमी कवि के हृदय से निकला हुआ एक आत्माभिव्यंजक काव्य है जिसमें रसनीयता, मधुरता, भावातिरेक, शूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति, विरहानुभूति, मार्मिकता, उन्मुक्त प्रेम और हृदय–रस से सिक्त उक्तियाँ हैं। घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर सभी इस विषय में एक सी धारणा लिए हुए हैं। प्रेम की अनन्यता के भाव इन कवियों ने बड़ी दृढ़ता और मार्मिकता के साथ बार–बार व्यक्त किए हैं।

पद्माकर का काव्य फाग–वर्णन से भरा पड़ा है। होली का हुड़दंग हमारी ग्राम्य संस्कृति की विशेषता है। फाग खेलने के लिए कृष्ण और गोपियॉ एकत्र हैं। साँवले कृष्ण गोपियों के रंग में और गोपियाँ कृष्ण के रंग में डूब गयीं। यह भीगना आन्तरिक है इस अनुराग–फाग में कितनी तन्मयता है! फाग की भीड़ में अनुराग का एक सामूहिक वाह्य दृश्य दृष्टव्य है–

"फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी।
छीनि पितंबर कम्मर तें सु विदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय, लला फिर आइयो खेलन होरी।"[2]

उत्तर भारत की होली की हुडदंग जगत–प्रसिद्ध है। गोपियों द्वारा अबीर की झोली कृष्ण के ऊपर उडेल दी गयी। कपोलों पर अबीर रगड़–रगड़ कर लगायी गयी। होली खेलने का जीवंत चित्र कवि ने खींचा है, जिसमें ग्राम्य जीवन का चित्र जीवंत हो उठा है।

वस्तुतः रीतिकालीन कविता भोग और आनन्द की कविता है। उसमें जीवन के स्वस्थ मूल्यों को बहुत कम महत्व दिया गया है। सम्भवतः इसी कारण आलोचकों ने इसे उपेक्षणीय बताया है। इस काल की कविता भाव सौदर्य और

---

1. डॉ0 आर.पी. गंगवार–काव्य परिचय, पृ० 203
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 171

रूप– सौदर्य के साथ–साथ कला–सौन्दर्य की दृष्टि से अद्भुत प्रतीत होती है। काव्य–सौन्दर्य की दृष्टि से अद्भुत प्रतीत होती है। काव्य–सौन्दर्य के अन्तर्गत विविध भावों का चित्रण और अनेक क्रीड़ा–कलापों की व्यंजना के कारण इस काल की कविता को चिरकाल तक स्मरण किया जायेगा हम यह नहीं कह सकते कि रीतिकालीन कवि समाज निरपेक्ष होकर कविता कर रहा था। अपने समय, समाज और परिवेश को जितनी ईमानदारी से रीतिकालीन कविता ने प्रस्तुत किया है उतनी ईमानारी साठ के बाद की कविताओं में ही देखने को मिलती है। रीतिकालीन कवियों ने तत्कालीन परिवेश में विकसित भोग–प्रधान संस्कृति को व्यापक अभिव्यक्ति दी है रीतिकालीन काव्य में ऋतुओं और त्यौहारों के साथ–साथ जीवन के उल्लास को भी चित्रित किया गया है ग्राम्य जीवन में व्याप्त फागोत्सव एवं वहाँ की माटी में रची–बसी लोक संस्कृति के भी रंग रीतिकालीन कविता में बिखरे हुए हैं। रीतिकालीन कविता पर्याप्त रूप में जनजीवन से जुड़ी हुई है।

(घ) आधुनिककालीन हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध :

सामान्यतः आधुनिकता से आशय देश–काल के बोध से लिया जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं कि आधुनिकता वस्तुतः मानवीय प्रगति की सूचना देती है तथा नये परिवेश को स्वीकार करके चलती है। वास्तव में आधुनिकता विगत सांस्कृतिक मूल्यों को अपने अन्दर समेटकर मानव की वर्तमान स्थिति और उसके भविष्य विषयक दायित्व की सक्रियता और चेतना को स्वीकार करना है। आज के संघर्षगामी जीवन में मनुष्य की संवेदना कुछ दूसरे और नये ढंग से अनुभव कर रही है। अनुभूति और संवेदना का यह नयापन आधुनिकता का ही एक अंग है। आधुनिक और आधुनिकता में अन्तर है। 'आधुनिक' 'मध्यकालीन' से अलग होने की सूचना देता है। 'आधुनिक' वैज्ञानिक आविष्कारों और औद्योगीकरण का परिणाम है जबकि आधुनिकता' औद्योगीकरण की अतिशयता, महानगरीय एकरसता, दो महायुद्धों की विभीषिका का फल है। वस्तुतः नवीन

ज्ञान–विज्ञान, टेक्नोलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न विषम मानवीय स्थितियों के नये, गैररोमैंटिक और अमिथकीय साक्षात्कार का नाम 'आधुनिकता' है।

आज का युग जिस संकट से गुजर रहा है वह बहुत व्यापक है धर्म, विज्ञान, भाषा, नैतिकता और दर्शन के क्षेत्र में जो संकट उपस्थित हुआ है वह बड़ा गम्भीर है यही संकट मनुष्य को और सर्वाधिक संवेदनशील कवि को आधुनिकता की ओर खींच रहा है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल के नामकरण की सार्थकता इस बात में है कि यहाँ देश, समाज और संस्कृति के संदर्भ में विकास का सजग प्रयत्न है, और इसके लिए शताब्दियों से हिन्दी क्षेत्र के संस्कार में बसी ब्रजभाषा को छोड़कर नयी भाव–भूमि खड़ी बोली मे उदित होती है। साहित्य और देश पहली बार आधुनिक काल में एक–दूसरे से इस रूप में जुड़ते हैं। इस खण्ड में आधुनिक कालीन हिन्दी कविता के विविध काल खण्डों (भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता) में ग्राम्य–बोध की स्थिति का अनुशीलन किया जायेगा।

(i) भारतेन्दु युग :

भारतेन्दु युगीन काव्य–सृजन अनेक प्रवृत्तियों को अपने में समेटे हुए है। वास्तव में भारतेन्दु अपने युग और उसकी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि थे। वे जनता के कवि थे। उन्होंने जो कुछ लिखा है, जन–समाज के लिए लिखा है। भारतेन्दु की लोकप्रियता का मूल कारण ही यह था कि उन्होंने जन–साधारण की रूचि के अनुकूल विषयों को अपने काव्य में स्थान दिया और साथ–ही–साथ जनसाधरण का मन्त्र भी फूँका व राष्ट्रीय चेतना को जगाने का सार्थक प्रयत्न भी किया। न केवल भारतेन्दु ने, अपितु उनके सहयोगियों ने भी सामाजिक विकृतियों को दूर करने, नयी चेतना को जगाने तथा नवजागरणऔर समसामयिक जीवन के स्वर फूँकनें में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके बारे में लिखा कि "वे सिद्ध वाणी के अत्यंत सरस हृदय कवि थे। इससे एक ओर तो उनकी लेखनी से शृंगार रस के ऐसे रसपूर्ण और मार्मिक कवित्त सवैए निकले कि उनके जीवन काल में ही चारों ओर लोगों के

मुँह से सुनाई पड़ने लगे और दूसरी ओर स्वदेश प्रेम से भरी हुई उनकी कविताएँ चारों ओर देश के मंगल का मन्त्र सा फूँकने लगीं।"[1] हिन्दी भाषा के विकास में भारतेन्दु ने महत्वपूर्ण योगदान दिया भारतेन्दु की प्रेरणा ने हिन्दी भाषा के आन्दोलन को वास्तविक जन–आन्दोलन का रूप दे दिया। इसी जनान्दोलन ने हिन्दी को जन–भाषा बनने की ओर बराबर उन्मुख बनाए रखा। भारतेन्दु की प्रेरणा से ही हिन्दी जनभाषा बनी। भारतेन्दु युग के कवियों एवं साहित्यकारों द्वारा किये गये हिन्दी भाषा के विकास को रेखाँकित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं "इन कवियों और साहित्यकारों ने हमारी भाषा को अपने हृदय का सम्पूर्ण रस निःशेष भाव से उँड़ेलकर दे दिया है। इनके अपूर्व आत्मदान का ही परिणाम है कि भाषा वृद्धावस्था से एकदम मुक्त हो गयी। जीवन के प्रवाह की अवरोधक शक्ति का हटाना ही सबसे महत्व की बात है।"[2]

भारतेन्दु युग में वाह्याडम्बरों, बाल–विवाह, बिधवाओं की उपेक्षा का विरोध किया गया। इतना ही नहीं, नारी शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा और अस्पृश्यता को लेकर अनेक सहानुभूतिमूलक कविताऐं भी लिखी गयीं। गरीब जनता की आर्थिक समस्याओं का चित्रण भी इस काल के कवियों ने बड़ी ईमानदारी से किया है। भारतीय अर्थव्यवस्था के बिखरे हुए और कमजोर पक्ष को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए इस काल खण्ड के कवियों ने स्वदेशी उद्योगों और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर आग्रह पूर्वक बल दिया है। अंग्रेजों की नयी व्यवस्था जहाँ एक तरफ सराहनीय थी वहीं दूसरी तरफ उनके द्वारा भारतीय जनता का किया जा रहा कठोर आर्थिक शोषण अत्यन्त निन्दनीय था, जिसका मार्मिक चित्रण भारतेन्दु के काव्य में मिलता है भारतेन्दु के मन में राजभक्ति और राष्ट्र–भक्ति दोनों अपने स्थान पर खरी है। वे अंग्रेजी शासन की भर्त्सना भी करते है और उनके कल्याणकारी कार्यो के प्रति आत्मीयता भी रखते हैं–

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 252
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ० 213

''भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारत–दुर्दशा न देखी जाई।।
अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।।
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी।
दिन–दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''[1]

भारतेन्दु लोकजीवन से गहरी संपृक्ति का अनुभव करते थे उन्होंने यह समझा कि लोकजीवन में आधुनिक चेतना और नये विचारों के संचार के लिए समर्थ भाग का माध्यम तैयार किया जाय। तदनुसार भारतेन्दु ने अपनी हिन्दी को 'नये चाल' में ढालकर एक समर्थ भाषा का माध्यम तैयार किया उनके बारे में डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी के विचार कुछ इस प्रकार हैं– ''भारतेन्दु द्वारा प्रवर्तित आधुनिक काल में एक ओर पश्चिम की नयी चेतना से सम्पर्क का यत्न है, तो दूसरी ओर अपने लोक–जीवन से जुड़े रहने की उतनी ही उत्कट लालसा है। पत्र–पत्रिकाओं के आयोजन से यदि एक उद्देश्य की पूर्ति होती है, तो नाटक और लोक–काव्यों के प्रचार–प्रसार से दूसरे उद्देश्य की।.........यह लोक–जीवन से जुड़े रहने की चिन्ता भारतेन्दु युगीन हिन्दी लेखक को पश्चिमी संस्कृति के प्रवाह में बहने नहीं देती।''[2]

भारतेन्दु रचित 'अंधेर नगरी' प्रहसन' अंग्रेजी राज पर तात्कालिक रूप में और शासन–सत्ता की प्रकृति पर शाश्वत रूप में सरल रूप में लिखा गया तीखा व्यंग्य है। शासन–सत्ता का अंधापन और अंधेर इस नाटक का उपजीव्य है। तात्कालिक संदर्भ ब्रिटिश राज का अन्याय है जिसमें समाज में व्याप्त मूल्यहीनता की स्थितियों को बखूबी उभारा गया है–

अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत विदेसा।।
गो द्विजश्रुति आदर नहिं होई। मानहु नृपति विधर्मी कोई।।
ऊँच नीच सब एकहिं सारा। मानहुँ ब्रह्म ज्ञान विस्तारा।।

---

1. सम्पादक : केसरी कुमार– काव्यश्री, पृ० 50
2. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 91

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।"[1]

भारतेन्दु की कविताओं में प्रकृति वर्णन तथा ग्राम्य जनजीवन का भी पर्याप्त चित्रण पाया जाता है। 'यमुना–वर्णन' शीर्षक कविता में कुछ ऐसी ही छवि दर्शनीय है–

"कूजत कहुँ कलहंस, कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त, कहूँ जल–कुक्कुट धावत।।
चक्रवाक कहुँ बसत, कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक, पिक जल कहुँ पियत, कहूँ भ्रमरावलि गावत।।
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु, रार विविध पंछी करत।
जलपान, नहान करि सुख–भरे तट–सोभा सब जिय–धरत।।"[2]

भारतेन्दु मण्डल के कवियों में प्रमुख है– बाबा सुमेर सिंह, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, अम्बिकादत्त व्यास, रामकृष्ण वर्मा बलवीर, राधाचरण गोस्वामी, सुधाकर द्विवेदी, और राधाकृष्ण दास। इनमें 'प्रेमघन' की कविताओं में ग्राम्य–जीवन के प्रति गहरी संसक्ति पायी जाती है। इन्होंने गाँवों के प्राचीन वैभव और आधुनिक दुर्दशा को चित्रित किया है प्रेमघन गाँव को, उसके समाज को उसके त्योहार आदि को जिस रूप में अनुभूत किया था उसका यथार्थ चित्र उभारा है खेतों में निराही करने वाली स्त्रियों का एक स्वच्छन्द चित्र दृष्टव्य है–

"खेतन में जल भर्‌यो शस्य उठि ऊपर लहरत।
चारहुँ ओरन हरियाली ही की छवि छहरत।।
भोरी भोरी ग्राम वधू इक संग मिलि गावति।
इक सुर में रस भरी गीत झनकार मचावति।।
धान खेत में बैठी चंचल चखनि नचावति।।
बन में भटकी चकित मृगी सी छवि छावत।।"[3]

भारतेन्दु युगीन कवियों में ग्राम्य जीवन तथा प्रकृतिपरक कविताओं एवं सामाजिक जीवन से जुड़ी दृश्यावलियों की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है।

---

1. डॉ0 प्रेमकान्त टण्डन–अंधेर नगरी, पृ० 61
2. केसरी कुमार (सम्पादक)–काव्य–श्री, पृ० 51
3. डॉ0 बच्चन सिंह–आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 95

भारतेन्दु युग में लिखा गया साहित्य पुनर्जागरण का साहित्य है। परम्परा से प्रचलित आदर्श, धारणाएँ और जीवन सूत्र जीवित तो थे किन्तु वे अपनी विशिष्टता और मौलिकता का रंग खो चुके थे। भारतेन्दु युगीन कवियों ने भारतीय अतीत के गौरव को तो शब्दबद्ध किया ही, वे क्षेत्रीय सीमाओं को पार करके समूचे राष्ट्र की धमनियों में प्रवाहित रक्त में राष्ट्रीयता का रंग घोलने में भी समर्थ हुए। इस युग के कवियों ने अपनी संवेदना आस–पास के जन–जीवन से ग्रहण की तथा युगीन जीवन में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक विषमताओं एवं बिरूपताओं का उद्‌घाटन किया। समाज में व्याप्त बाल–विवाह, विधवा समस्या, आर्थिक शोषण, भ्रष्टाचार जैसी रूढ़ियों एवं कुरीतियों पर इस युग के कवियों ने अपनी लेखनी चलाई। ग्रामीण जन–जीवन, प्राकृतिक वर्णन तथा गाँव के उत्सव–त्योहारों एवं लोकगीतों, लोकविश्वासों को पूरी जीवंतता में इस युग के कवियों ने अभिव्यक्ति दी है।

(ii) द्विवेदी युग :

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने समय के मनस्वी चिन्तक और सर्वाधिक प्रभावी व्यक्ति थे। उन्ही के प्रयत्नों से हिन्दी कविता का यह युग परिष्कार और नवजागरण की दिशा में सक्रिय हुआ। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दी–मंदिर के संस्कार और परिष्कार में आचार्य द्विवेदी का प्रभाव बढ़ता चला गया। द्विवेदी जी स्वयं उच्चकोटि के साहित्यकार नहीं थें, किन्तु उन्होंने उच्च कोटि के साहित्यकार अवश्य पैदा किए। वस्तुतः द्विवेदी जी सर्जक की अपेक्षा नियामक अधिक थे। उनकी कलम और बौद्धिक क्षमता ने कविता में परिष्कार ला दिया परिष्कार की इस दिशा में न केवल भावों का परिष्कार हुआ, अपितु, विचारणा और भाषा भी निरन्तर परिष्कृत होती चली गयी। इस परिष्कार का सर्वाधिक प्रभाव भाषा पर पड़ा। परिणामस्वरूप हिन्दी अपने व्याकरणिक सौष्ठव और सौन्दर्य से सज–सँवर कर कविता में आने लगी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविताओं के विषय में लिखा है कि ''उनकी अधिकतर कविताएँ इतिवृत्तात्मक (Matter of fact) हुईं। उनमें वह लाक्षणिकता, वह

चित्रमयी भावना और वह वक्रता बहुत कम आ पायी जो रस संचार की गति को तीव्र और मन को आकर्षित करती है।"[1] द्विवेदी जी भाषा की शुद्धि तथा वर्तनी की एकरूपता के प्रबल समर्थक थे अतएव इस युग की काव्यभाषा व्याकरण की दृष्टि से सामान्यतः शुद्ध है तथा वर्तनी की दृष्टि से उसमें भारतेन्दु जैसी अस्थिरता नहीं है। द्विवेदी युग की प्रमुख प्रवृत्ति की तरफ संकेत करते हुए डॉ0 नगेन्द्र कहते हैं कि "बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरूत्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता द्विवेदी युग की प्रधान भावधारा थी। अतः तत्कालीन कविता का मुख्य स्वर भी राष्ट्रीयता ही है।" [2] आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी खड़ी बोली कविता को व्यापक विस्तार दिया, स्वयं काव्य सृजन के साथ–साथ उन्होंने काव्य भाषा का परिष्कार भी किया। उनके विषय में डॉ0 बच्चन सिंह कहते हैं कि "काव्य भाषा के संस्कार–परिष्कार के साथ–साथ उन्होंने स्वयं कविताएँ लिखीं। अपनी काव्य–प्रतिभा के सम्बन्ध में वे 'मोगालते में नहीं थे। उनका मुख्य कार्य खड़ी बोली कविता को नाना विषयों और शैलियों की ओर उन्मुख करना तथा उसकी भाषा को संस्कार देना था।" [3] सरस्वती पत्रिका के माध्यम से न केवल द्विवेदी जी ने ऐसे बहुत से लेख लिखे जो नवजागरण की लहर को फैलाने में सहायक हुए अपितु उन्हीं की प्रेरणा से और लेखकों ने भी उल्लेखनीय कार्य किया।

द्विवेदी युग में कविता क्रमशः पूरे तौर पर खड़ी बोली में प्रतिष्ठित हो जाती है। इस समय का काव्य–प्रवाह हमें दो धाराओं में दिखाई देता है। एक धारा के प्रतिनिधि कवि हैं– श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, लोचन प्रसाद पांडेय, रूपनारायण पाण्डेय तथा रामनरेश त्रिपाठी। दूसरी धारा में हैं अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथलीशरण गुप्त, नाथूराम शंकर शर्मा, रामचरित उपाध्याय

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 332
2. डॉ0 नगेन्द्र–हिन्दी–साहित्य का इतिहास, पृ० 489
3. डॉ0 बच्चन सिंह–आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 106

तथा स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। साहित्य की दोनों मूलवृत्तियाँ रोमांटिक तथा क्लासिक जैसे यहाँ एक साथ प्रतिफलित हुई हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी युगीन प्रमुख सर्जकों मे गिनें जाते हैं। हिन्दी भाषा में खड़ी बोली को काव्य की भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वालों में इनका प्रमुख स्थान है। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'प्रियप्रवास' है। यह काव्य ग्रन्थ खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है इसका विषय पौराणिक है, किन्तु इसकी रेखांकित करने योग्य विशेषता यह है कि इसमें युगानुकूल समस्या को उठाया गया है। प्रियप्रवास के विषय में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि "आधुनिक काल में मनुष्य सम्पूर्ण रचना और चिन्तन के केन्द्र में है, ईश्वर अब व्यक्तिगत आस्था का विषय है, चित्रण के केन्द्र में है, ईश्वर अब व्यक्गित आस्था का विषय है, चित्रण का नहीं। इस दृष्टिकोण से इसकी सशक्त उद्घोषणा प्रियप्रवास' के रचना–विधान में तो मिलती ही है, कृति की लम्बी भूमिका में भी कवि ने इसका निर्भ्रान्त आख्यान किया है।"[1] हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास' में राधा, कृष्ण के अलौकिक रूप से हटकर उनके मानवीय और लोकोपकारक रूप को प्रस्तुत किया है। स्थूल प्रकृति–चित्रण भी उनके काव्य में मौजूद है। मनोहारी प्रकृति–चित्रण दृष्टव्य है–

"दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।।
तरू–शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी–कुल–बल्लभ की प्रभा।"[2]

हरिऔध यदि द्विवेदीयुग के पहले बड़े कवि हैं, तो मैथिलीशरण गुप्त इस युग के सम्पूर्णतः प्रतिनिधि कवि। वे आधुनिक काल के एक बड़े कवि हैं। उनकी लोकप्रियता के पीछे कई कारण बताये जाते हैं जैसे सीधी–सरल भाषा, पौराणिक कथानकों का चुनाव, गृहस्थ जीवन की महिमा का आख्यान व्यापक हिन्दू नैतिक मूल्यों का समर्थन और राष्ट्रीय भावधारा की अभिव्यक्ति। मैथिलीशरण गुप्त में

---

1. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 95
2. डॉ0 नगेन्द्र–हिन्दी–साहित्य का इतिहास, पृ० 492

कोई आभिजात्य नहीं था, उनके मन में अपने देसीपन का गहरा आत्मविश्वास था। कविता और निजी जीवन दोनों में वे अति साधारणता और सहजता के के पोषक थे। वे खाँटी चरित्र में दृढ़ बने, गृहस्थ जीवन में प्रचलित पौराणिक आख्यान और विनम्र आत्मविश्वास से उनका रचनात्मक व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। उनके काव्य में पारिवारिक जीवन के आदर्श और ग्रामीण संस्कृति व्यापक रूप में चित्रित हुए हैं। 'साकेत' के 'नवम् सर्ग' में वर्णित ग्राम्य जनजीवन एवं वहाँ के कार्य–व्यापार का चित्र दृष्टव्य है–

"पूछी थी सुकाल–दशा मैने आज देवर से–
कैसी हुई उपज कपास, ईख, धान की?
बोले–"इस बार देवि, देखने में भूमि पर
दुगुनी दया–सी हुई इन्द्र भगवान की।"
पूछा यही मैनें एक–एक ग्राम में तो कर्षकों ने
अन्न, गुड़, गोरस की वृद्धि ही बखान की,
किन्तु स्वाद कैसा है, न जाने, इस वर्ष हाय!
यह कह रोई एकअबला किसान की!
हम राज्य लिए मरते हैं?
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं।,
जिनके खेतों में है अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न?
पत्नी–सहित विचरते हैं वे, भव–वैभव भरते हैं,
हम राज्य लिए मरते हैं!"[1]

साकेत में राम के माध्यम से यदि आर्य संस्कृति और मानवीय संस्कृति के ग्रहण को महत्व मिला है तो अर्मिला के माध्यम से भारतीय नारी के चेतन व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है। 'भारत–भारती में कवि ने अपनी राष्ट्रीय भावना की एक रूपरेखा प्रस्तुत की है, उसमें जागरण का स्वर प्रधान है।

गुप्त जी की नायिका प्रधान आख्यान कृति "यशोधरा" का महत्वपूर्ण स्थान है। इस कृति का लक्ष्य नारी भावना की अभिव्यक्ति है इसमें कवि ने पारिवारिक जीवन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। भारतीय ग्राम्य जीवन तथा पारिवारिक मूल्यों और आदर्शो का सुन्दर चित्रण 'यशोधरा' में कवि ने किया है।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त–साकेत (नवम् सर्ग), पृ० 306–7

अपने प्रिय की आदर्श सिद्धि की कामना से पीड़ित यशोधरा वास्तव मे सम्पूर्ण भारतीय नारी की पीड़ा और विवशता को उद्घाटित करती है। काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"अबला–जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी–
आँचल में है दूध और आँखों में पानी!
मेरा शिशु–संसार वह
दूध पिये, परिपुष्ट हो।"[1]

ग्राम्य–जीवन तथा वहाँ की प्रकृति के प्रति सहज लगाव गुप्त जी की कृतियों में पाया जाता है। विरह की पीड़ा झेलती यशोधरा को ये प्राकृतिक उपादान और भी पीड़ित करने लगते है।गुप्त जी की कृति 'यशोधरा' की काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"उनका यह कुंज–कुटीर वही
झड़ता उड़ अंशु–अबीर जहाँ,
अलि, कोकिल, कीर, शिखी सब हैं।
सुन चातक की रट 'पीव कहाँ?
अब भी सब साज समाज वही
तब भी सब आज अनाथ यहाँ,
सखी, जा पहुँचे सुध–संग कहीं
यह अन्ध सुगन्ध समीर वहाँ!"[2]

मैथिलीशरण गुप्त जी की काव्य कृतियों में नारी को परम्परायुक्त रूप में ही देखा गया है। उसको जो व्यक्तित्व दिया गया है उसका केन्द्रीय बिन्दु पति है वह वर्णाश्रमधर्मी, कुलवधू, पतिव्रता और परम्परावादी है। उसकी इच्छा पति की इच्छा है, उसका प्राप्य पति है। पति के बाहर, कुल के बाहर जो कुछ भी वह दिखायी पड़ती है वह औपचारिक है।

श्रीधर पाठक द्विवेदी युगीन प्रकृति प्रेमी कवि थे। इनका प्रकृति प्रेम स्वच्छन्द भावना को लिए हुए है। इनसे पूर्व तक प्रकृति को उद्दीपन शैली में ही व्यक्त किया जाता था, किन्तु पाठक जी ने उस सीमा को तोड़ा और प्रकृति के

---

1. मैथिलीशरण गुप्त–यशोधरा, पृ० 40
2. वही, पृष्ठ 38

उन्मुक्त प्रांगण में दौड़ लगाई। इन्होंने प्रकृति को रीति के बन्धन से मुक्त किया। पाठक जी ने 'काश्मीर सुषमा' के अन्तर्गत प्रकृति का निरूपण स्वच्छन्दतावादी भावना से किया है–

"प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल–पल पलटति भेस छनिक छवि छिन–छिन धारति।"[1]

द्विवेदी युगीन कवि रामनरेश त्रिपाठी की कविता में किसानी सहजता, गाँधीवादी सात्विकता, देश–प्रेम तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का स्वाभाविक मिश्रण है। मिलन, पथिक, स्वप्न, शीर्षक कवि के तीन खंडकाव्य छायावाद–पूर्व कविता की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। ये खण्डकाव्य लोक–साहित्य की भाव–भूमि के निकट हैं। इनमें गोचारणी सादगी पायी जाती है लोक अभिप्रायों से नवविकसित राष्ट्रीयता के भाव को संपृक्त करके कवि ने उसे अधिक व्यापक और ग्राह्य बनाया है त्रिपाठी जी की कल्पना मानव हृदय के सामान्य मर्म पथ पर चलने वाली है। इनका ग्राम–गीत इस बात को और भी अधिक स्पष्ट कर देता है–

"चारु चंद्रिका से आलोकित विमलोदक सरसी के तट पर,
बौर–गंध से शिथिल पवन में कोकिल का आलाप श्रवण कर।
और सरक आती समीप है प्रमदा करती हुई प्रतिध्वनि,
हृदय द्रवित होता है सुनकर शशिकर छूकर यथा चंद्रमणि।।
किन्तु उसी क्षण भूख प्यास से विकल वस्त्र वंचित अनाथगण,
'हमें किसी की छाँह चाहिए' कहते चुनते हुए अन्नकण,।"[2]

रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं में प्राकृतिक सौन्दर्य, मानवीकरण तथा ग्राम्य चेतना की सजीव अभिव्यक्ति हुई है।

द्विवेदी युग कविता में खड़ी बोली के प्रतिष्ठित होने का युग है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली को परिष्कृति प्रदान की, उसके रूप–सौंदर्य को सजाया– सँवारा और भाषिक शुद्धता पर ध्यान देते हुए खड़ी बोली में जैसे नवजीवन का संचार किया। द्विवेदी युग में प्रबन्ध–काव्यों का निर्माण पौराणिक प्रसंगों को युगीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके किया गया इससे एक नये

---

1. डॉ0 बच्चन सिंह–हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 320
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 342

मानवतावाद का सृजन हुआ, मनुष्य के व्यक्तित्व में आस्था का स्वर प्रबल हुआ। सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति मिली, भाव, निर्वहण में इतिवृत्तात्मकता को पर्याप्त महत्व मिला। ग्राम्य–संस्कृति में व्याप्त प्रमुख तत्वों पारिवारिक जीवन के मूल्यों, आदर्शों तथा संस्कारों को द्विवेदी युगीन कविता में सशक्त अभिव्यक्ति मिली। मनोरम प्राकृतिक वर्णनों को भी पर्याप्त महत्व मिला। अतः हम कह सकते हैं कि जागृति के नवोन्मेष और परिष्कार के इस युग में सांस्कृतिक पुनरूत्थान, राष्ट्रीयता, सामाजिकता बौद्धिकता और उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा हुई। भाषा परिष्कृत हुई और विविध काव्य रूपों ओर शैलियों का विकास हुआ।

(iii) छायावाद युग :

द्विवेदी युग की इतिवृत्त–प्रधान, गद्याभास देने वाली और वहिर्मुखी स्थूल कविताओं की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद का आविर्भाव हुआ। इसके जन्म के मूल में तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना और नवीन मानवीय चेतना का भी विशेष हाथ रहा है। सामान्यतः छायावादी कविता को दो महायुद्धों के मध्य प्रवाहित होने वाली सर्वाधिक चेतन और कलात्मक काव्यधारा कहा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ''छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थो में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है...... 'छायावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य–शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।.......छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।''[1] छायावाद शब्द के आरंभिक प्रयोगकर्ता ने 'छाया' शब्द से ठीक–ठीक क्या व्यंजना देनी चाही थी यह बता पाना कठिन है। कवि प्रसाद ने संस्कृत प्रयोगों के साक्ष्य पर 'छाया' की व्याख्या की–''मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता।'' 'छाया' का अर्थ पानी, आब, चमक, कान्ति लेते हुए उन्होंने निष्कर्षतः कहा, ''छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है''[2] छायावाद

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 362
2. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 109–10

को परिभाषित करते हुए डॉ0 नामवर सिंह कहते हैं कि ''छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।''[1] राष्ट्रीय जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया उसी तरह काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गयी।

छायावाद की भावगत प्रवृत्तियों में आत्मनिष्ठता ओर वैयक्तिकता, संयत प्रेम भावना, श्रृंगारिकता, नारी भावना और पावनता, कल्पना की अतिशयता और प्रकृति के प्रति विशिष्ट अनुराग की भावना को लिया जा सकता है। संयोग की अपेक्षा छायावादियों ने विरह के गीत अधिक गाए हैं। प्रकृति के सौन्दर्य सघन चित्रण, प्रकृति का मानवीकरण छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। छायावाद को डॉ0 नगेन्द्र ने स्थूल के प्रति शूक्ष्म का विद्रोह कहा है। प्रमुख छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा हैं।

'प्रसाद' की काव्य–चेतना का पथ पूर्णतः छायावादी रहा है। उनका अंतर् सौन्दर्य दृष्टि युक्त, मस्तिष्क में प्रश्नों का अंबार, प्रकृति के प्रति प्रेम तथा नारी के प्रति सम्मान भावना से युक्त है। उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ झरना, आँसू, लहर, तथा कामायनी हैं। उनकी काव्यकृति कामायनी दार्शनिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और कलात्मक वैशिष्ट्य से युक्त है। कामायनी के विषय में मुक्तिबोध का कहना है कि ''कवि ने युगीन समस्याओं के तीव्र दंश और आघातों को अपनी कल्पना के द्वारा एक विशेष परिवेश से जोड़कर उसे उसकी सम्पूर्ण भयावहता के साथ चित्रित किया है।....... इसमें मानवीय–संस्कृति की चिरन्तन समस्या का समाधान काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।''[2] श्रद्धा सर्ग में मनु श्रद्धा से उसका परिचय पूछ रहें हैं। सुन्दर प्राकृतिक उपमानों के प्रयोग से कवि ने अनुपम सौंदर्य वर्णन की छटा बिखेर दी है–

---

1. डॉ0 नामवर सिंह–छायावाद, पृ० 17
2. डॉ0 गिरिजाराय–कामायनी की आलोचना–प्रक्रिया, पृ० 141

"कौन हो तुम बसंत के दूत विरस पतझड़ में अति सुकुमार!
घन–तिमिर में चपला की रेख, तपन में शीतल मंद बयार।
नखत की आशा–किरण समान, हृदय के कोमल कवि की कांत–
कल्पना की लघु लहरी दिव्य, कर रही मानस–हलचल शांत!"[1]

काम सर्ग में मनु यौवन के आगमन की तुलना कानन में बसन्त के आगमन से से कर रहे हैं। यहाँ प्रतीकात्मक शैली में प्राकृतिक दृश्यावलियों का प्रयोग करते हुए कवि ने जीवन में उल्लास उमंग, यौवनागम तथा जीवन के प्रति गहरे राग भाव को अभिव्यक्ति दी है–

"मधुमयबसंत जीवन–वन के, बह अन्तरिक्ष की लहरों में,
कब आये थे तुम चुपके से रजनी के पिछले पहरों में?
क्या तुम्हें देखकर आते यों मतवाली कोयल बोली थी?
उस नीरवता में अलसाई कलियों ने आँखें खोली थी?"[2]

प्रसाद की काव्य कृति आँसू में प्रेमजनित घनीभूत पीड़ा की मादक अभिव्यक्ति हुई है। आँसू में निरूपित वेदना दैहिक स्तर पर जन्म लेती है और उसका पर्यवसान मानसिक और भावात्मक स्तर पर होता है। प्रकृति और मानवता में व्याप्त विरह भाव की पीड़ा को कवि ने सार्वभौम वेदना में रूपान्तरित करके सुखदायक बना दिया हैं काव्यपंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"पतझड़ था, झाड़ खड़े थे
सूखी–सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछाकर
आये तुम इस क्यारी में!
शशि–मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये।"[3]

प्रसाद ने अपनी काव्य कृतियों में सांस्कृतिक दृष्टि, राष्ट्रीयता देशप्रेम, जागरण के स्वर तथा प्राकृतिक सौन्दर्य को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है।

---

1. जयशंकर प्रसाद–कामायनी (श्रद्धा सर्ग), पृ० 14
2. जयशंकर प्रसाद–कामायनी (काम सर्ग), पृ० 18
3. जयशंकर प्रसाद–आँसू, पृ० 19

सुमित्रानन्दन पंत ऐसे छायावादी कवियों में से हैं जिन्हें प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में जाना जाता है उनके प्रकृति काव्य में नैसर्गिक सौन्दर्य चित्रित हुआ है। उनकी कविताओं में ग्राम्य जनजीवन तथा वहाँ की सुनहली प्रकृति जीवंत रूप में चित्रित हुई है। 'पर्वत प्रदेश में पावस' शीर्षक कविता में प्रकृति की सुन्दर छवि दृष्टव्य है–

"पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश,
पल–पल परिवर्तित प्रकृति–वेश!
× × × × ×
उड़ गया, अचानक लो भूधर!
फड़का अपार वारिद के पर!
रव–शेष रह गए हैं निर्झर!
है टूट पड़ा भू पर अम्बर।" [1]

पन्त जी की कविताओं में ग्राम्य जीवन वहाँ की शस्य–श्यामला धरती, प्रकृति तथा अभावग्रस्त ग्रामीण जनों का जीवंत एवं मार्मिक चित्र खींचा गया है–

"भारत माता ग्राम–वासिनी!
खेतों में फैला है श्यामल
धूल–भरा मैला–सा आँचल
गंगा–यमुना में आँसू–जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी!
× × × × ×
तीस कोटि सन्तान नग्न तन,
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्रजन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नत मस्तक
तरु–तल निवासिनी!" [2]

समृद्ध प्रकृति के बीच बसे ग्राम जीवन और वहाँ के पूरे परिवेश को कवि ने निम्न शब्दों में अभिव्यक्ति दी है 'ग्रामचित्र' शीर्षक कविता दृष्टव्य है–

"यह रवि–शशि का लोक, जहाँ हँसते समूह में उडुगण,
जहाँ चहकते विहग, बदलते क्षण–क्षण विद्युत–प्रभ–घन।

---

1. डॉ0 उमेश मिश्र 'शिव'–आधुनिक हिन्दी काव्य–सरिता, पृ० 103–4
2. वही, पृ० 104–5

यहाँ वनस्पति रहती, रहती खेतों की हरियाली,
यहाँ फूल है, यहाँ ओस, कोकिला, आम की डाली।
ये रहते हैं यहाँ–और नीला नभ, बोई धरती,
सूरज का चौड़ा प्रकाश, ज्योत्स्ना चुपचाप विचरती।
प्रकृति धाम यह, तृण–तृण कण–कण जहाँ प्रफुल्लित जीवित,
यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत!"[1]

पंत के काव्य में प्रकृति का संवदेनात्मक रूप चित्रित हुआ है। प्रकृति निरूपण में जो कोमल कल्पना देखने को मिलती है उसमे न केवल प्रकृति और शूक्ष्म कोमल छवियाँ अंकित हैं अपितु उसमें स्वस्थ स्पन्दन, कम्पन और सिहरन की मधुर ध्वनि को स्पटतः सुना जा सकता है ग्राम्य–जीवन एवं नारी–सौन्दर्य की छवियाँ स्पष्टतः देखी जा सकती हैं।

निराला सार्वभौम प्रतिभायुक्त प्रमुख छायावादी कवि हैं। छायावादी कवि होने के साथ–साथ प्रगतिशील चेतना के भी कवि हैं निराला आम–जनजीवन के बहुत निकट थे, उनकी अनेक कविताओं में ग्राम–प्रकृति, खेत–खलिहान और ग्राम्य–जीवन के यथार्थपरक एवं मुँहबोलते चित्र हैं। लोक गीतों में उनकी पर्याप्त रूचि थी ऐसी रूचि का कोई एक कारण नहीं था वरन अनेक कारण थे, पहला कारण यह था कि वे लोक जीवन में पले और बड़े हुए। दूसरे उनकी यह धारणा कि मानव विकास के लिए लोक संस्कृति का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। निराला के लोकगीतों की सबसे बडी विशेषता यह है कि वे सहज–स्वाभाविक तो हैं ही आडम्बर रहित और जनरूचि के भी निकट हैं काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"बाँधों न नाव इस ठाँव, बन्धु!
पूछेगा सारा गाँव, बन्धु!
यह घाट वही जिस पर हँसकर,
वह कभी नहाती थी धँसकर,
आँखें रह जाती थीं फँसकर,
कँपतें थे दोनों पाँव बन्धु!"[2]

---

1. सम्पादक : केसरी कुमार–काव्य –श्री पृ० 74–75
2. सम्पादक : रामविलास शर्मा– "राग–विराग' पृ० 162

प्रफुल्लित प्रकृति और होली की मस्ती में डूबे जन–मन का सुन्दर चित्र निराला ने अपनी एक कविता मे खींचा है। काव्य पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"फूटे हैं आमों में बौर,
भौंर वन–वन टूटे हैं।
होली मची ठौर–ठौर,
सभी बन्धन छूटे हैं।
फागुन के रंग राग,
बाग–वन फाग मचा है,
भर गये मोती के झाग,
जनों के मन लूटे हैं।
माथे अबीर से लाल,
गाल सेंदुर के देखे,
आँखें हुई हैं गुलाल,
गेरू के ढेले कूटे हें।"[1]

निराला के लोकगीतों में लोक चित्र को गहराई के साथ अभिव्यक्ति मिली है। उन्होंने कई होली गीत लिखे। 'परिमल' के बाद के काव्य के प्रत्येक चरण में होली की धुन गूँजती है यहाँ निराला का प्रसिद्ध होली लोकगीत दिया जा रहा है जो जनसंगीत की दृष्टि से एक श्रेष्ठ गीत है–

"नयनों के डोरे लाल गुलाल–भरे, खेली होली।
जागीरात सेजप्रिय पति–संग रति सनेह–रँग घोली,
दीपित दीप–प्रकाश, कंज–छवि मंजु–मंजु हँस खोली–
मली मुख चुम्बन–रोली।"[2]

निराला जन–साधारण की अपरम्पार शक्ति और भोले सौन्दर्य को अपनी रचनात्मकता द्वारा अभिव्यक्ति देते हैं। खेत जोतकर घर आने वाले किसान के सम्पूर्ण परिवार का दैनन्दिन जीवन उनकी एक कविता में कुछ यूँ व्यक्त हुआ है–

"खेत जोत कर घर आये हैं।
बैलों के कंधों पर माची
माची पर उल्टा हल रक्खा

---

1. सम्पादक : रामविलास शर्मा– "राग–विराग" पृ० 156
2. वही, पृ० 46

बद्धी हाथ, अधेड़ पिता जी
माता जी, सिर गट्ठल पक्का
पुए लगा कर बड़ी बहू ने
मन्नी से पर पकवाये हैं।"[1]

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का काव्य वेदना और करूणा की लेखनी से लिखा गया है। उनके काव्य–सृजन में रहस्य, दर्शन और सौन्दर्यमयी पीड़ा के तत्व मिले हुए हैं। महादेवी वर्मा के प्रकृति–चित्रण में भावुकता और कल्पना का सर्वाधिक योग दिखायी देता है और इसकी साज–सज्जा के निमित्त महादेवी जी ने अपनी अलंकृत कला के श्रेष्ठ उपादानों का प्रयोग किया है। इनकी प्रकृति जड़ नहीं, सचेतन है। और मानवीय कार्य– व्यापारों से परिपूर्ण है महादेवी जी ने अपने काव्य में प्रकृति को आधार बनाकर ही अधिकाँश भावों के मनोरम और आकर्षक चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनकी विरह–वेदना से युक्त काव्य पंक्तियाँ निम्न हैं–

"मैं आज चुपा आई चातक
मैं आज सुला आई कोकिल,
कण्टकित मौलश्री हरसिंगार,
रोके हैं अपने श्वास शिथिल!
सोया समीर नीरव जग पर
स्मृतियों का भी मृदुभार नहीं!"[2]

छायावाद अपने पूर्ववर्ती काव्य की स्थूल और इतिवृत्त शैली के प्रति विद्रोह करके अनगिनत अपरिभाषित मूल्यों का शूक्ष्म अभिव्यंजन प्रस्तुत करता है। दूसरे वह प्रकृति के विस्तृत वक्ष पर फैली उन्मुक्त सौन्दर्य राशि से भाव, रंग और गन्ध की शूक्ष्म कणिकाओं को समेटता हुआ काव्य का ऐसा श्रृंगार करता रहा हैं कि जिसे देख, सुन और हृदयंगम करके मानव का हताश, निष्क्रिय और बौद्धिक निष्प्राणता–वलयित जीवन किंचित राहत पाता रहा है। छायावाद जीवन का काव्य है, यह शूक्ष्म और चेतन शिल्प में बँधा हुआ एक ऐसा काव्य–प्रवाह है

---

1. दूधनाथ सिंह–निराला : आत्महन्ता आस्था, पृ० 177
2. महादेवी–सान्ध्य गीत, पृ० 18–19

जिसमें वैयक्तिक मनोभाव, सांस्कृतिक दृष्टि, मानवतावादी चेतना तथा अन्य अनेक अन्तर्विरोधी स्थितियों का समन्वित रूप मिलता है। प्राकृतिक सौन्दर्य तथा ग्राम्य संस्कृति के प्रति गहरा राग भाव छायावादी कविता की विशेषता है। भावात्मक दृष्टिकोण, दार्शनिक अनुभूति और अस्मिता की खोज से प्रेरित सांस्कृतिक चेतना का बोधक यह काव्य प्रकृति की चित्रशाला में जीवन संगीत बनकर आया है।

(iv) प्रगतिवाद :

प्रत्येक युग की अपनी दृष्टि और सृष्टि होती है, परिस्थितियों और परिवेश से प्रभावित होकर रचनाकार की दृष्टि खुलती है और आवश्यकतानुसार फैलती जाती है। 'प्रगतिवाद' साहित्य का वह रूप है जो जीवन को स्वस्थ एवं हितकारी दिशा प्रदान करता है। प्रगतिवाद एक खास किस्म के साहित्य के लिए व्यवहृत शब्द है, इसके विपरीत प्रगतिशील शब्द की परिधि में पर्याप्त व्याप्ति और विस्तृति है।" 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के समय से हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन की शुरूआत होती है सोवियत आदर्शों और रूस की क्रान्ति से प्रेरित लेखकों ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस संगठन को बनाया था। भारत में इस संघ के पहले अधिवेशन की अध्यक्षता प्रेमचन्द ने की।"[1] डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार "प्रगतिवाद रचना और आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण लेकर आया। यह सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही रचना का उद्देश्य मानता है।....... प्रत्येक युग में यथार्थ की दो शक्तियों का द्वन्द्व चलता रहता है– मरणोन्मुख पुरानी शक्तियों और नवीन जीवन्त शक्तियों का। सामाजिक स्तर पर पुरानी शक्तियों में शोषक लोग होते हैं और नवीन शक्तियों में शोषित गरीब किसान मजदूर होते हैं। नवीन जीवन्त शक्तियाँ पुरानी शक्तियों को नष्ट कर नवीन जन–मंगलशाली समाज की स्थापना की कोशिश करती हैं।"[2] प्रगतिशील साहित्य के विषय में डॉ0 नामवर सिंह का कहना है कि:

---

1. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 189–90
2. डॉ0 नगेन्द्र–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 623–24

"प्रगतिशील साहित्य कोई स्थिर मतवाद नहीं है, बल्कि, यह एक निरन्तर विकासशील साहित्य–धारा है, जिसके लेखकों का विश्वास है कि प्रगतिशील साहित्य लेखक की स्वयंभू अन्तः प्रेरणा से उद्‌भूत नहीं होता, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम से वह भी परिवर्तित और विकसित होता रहता है और उसके सिद्धान्त उत्तरोत्तर स्पष्ट तथा अधिक पूर्ण होते चलते हैं।"[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छायावादी कवि के रूप में जितने विख्यात रहे हैं उतने ही प्रगतिशील चेतना के कवि के रूप में भी चर्चित रहे हैं सामाजिक चेतना और करूण भावनाओं से युक्त कविताओं में उनकी भिक्षुक एवं विधवा जैसी कविताओं को लिया जा सकता है। सुमित्रानन्दन पंत का परवर्ती काव्य उनकी प्रगतिशील भावना को अभिव्यक्ति देता है। वास्तव में युगान्त में कवि भावनाओं के स्वाप्निल संसार को त्यागकर जगती के जनपथ पर आ खड़ा होता है।

प्रगतिवादी काव्य शोषण का विरोध करता है। किसानों–मजदूरों से अपेक्षा की जाती है कि वे सामंतों पूँजीपतियों के शोषण का अंत करेगें। प्रगतिवादी कवि श्रम में सौन्दर्य देखते हैं। वे सहज, सामान्य जीवन–स्थितियों में भी सौन्दर्य देखतें हैं। इस विषय में डॉ0 नगेन्द्र का कहना है कि "प्रगतिवाद ने सौन्दर्य को नये दृष्टिकोण से देखा। वह वर्तमान जन--जीवन में सौन्दर्य खोजता है। सौन्दर्य का सम्बन्ध हमारे हार्दिक आवेगों और मानसिक चेतना दोनों से होता है। इन दोनों का सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों से होता है।"[2] प्रगतिवादी कवियों ने व्यंग्य के द्वारा विषमता का चित्रण एवं उसका विरोध किया। प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति और ग्राम जीवन के सुन्दर चित्र खींचे हैं। इन कवियों ने प्रेम को सामाजिक–पारिवारिक रूप में देखा और उसका चित्रण किया। प्रमुख प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन हैं।

नागार्जुन मूलतः मार्क्सवादी कवि थे, किन्तु वे उसके बाहर भी विचरण कर लेते थे। नागार्जुन का कृतित्व प्रगतिशील चेतना का वाहक है। उन्होंने जो

---

1. डॉ0 नामवर सिंह–आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० 64
2. डॉ0 नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 624

भी लिखा है, उसके चित्र जीवन–विशेषकर मध्यवर्गीय जीवन और मजदूर वर्ग की जिन्दगी के बही–खाते से लिए गये हैं। नागार्जुन लोक से जुड़े हुए कवि थे, यही कारण है कि उनकी दृष्टि में यथार्थता, व्यापकता आ सकी है। लोक से आशय सम्पूर्ण समाज से लिया जाना चाहिए। प्रकृति–वर्णन का चित्र दृष्टव्य है–

"अब के इस मौसम में
कोयल आज बोली है
पहली बार!
टूसों को उमगे कई दिन हो गए
टेसू को सुलगे कई दिन हो गए
अलसी को फूले कई दिन हो गए
बौरों को महके कई दिन हो गए।"[1]

आजादी के बाद भारतीय राजनीति में आई मूल्यहीनता घूसखोरी तथा भ्रष्टाचार एवं बदहाल शिक्षा व्यवस्था पर नागार्जुन ने मार्मिक व्यंग्य किया है। काव्य–पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"कुछ दिन वीते मास्टर ने यह कड़ा विरोध पत्र लिख डाला
"ताम–झाम थे प्रजातन्त्र के, लटका था सामंती ताला
मंत्री जी, इतनी जल्दी क्या आजादी का पिटा दिवाला
अजी आप को उस दिन मैने नाहक ही पहनाई माला"
और लिखा "उस रोज आप से भीख माँगने नहीं गया था
आप नये थे, नया ठाठ था, लेकिन मैं तो नहीं नया था
भूल गये क्या अजी आपका छोटा भाई फेल हुआ था
और आप ने मुझे जेल से मर्मस्पर्शी पत्र लिखा था।"[2]

सर्वोदयी नेताओं पर नागार्जुन ने कुछ प्रकार व्यंग्य किया है–

"बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के।
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के!
सचमुच जीवनदानी निकले तीनों बंदर बापू के!
ज्ञानी निकले, ध्यानी निकले तीनों बन्दर बापू के!"[3]

---

1. नागार्जुन–प्यासी पथराई ऑखें, पृ० 45
2. सम्पादक : नामवर सिंह, नागार्जुन–प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 99–100
3. वही, पृ० 108

नागार्जुन की लोक–दृष्टि के वृत्त में समूचा लोक जीवन अपनी पूरी यथार्थता, वास्तविकता और गुण–दोषों के साथ समा सका है। वे कहीं तो राजनीति पर व्यंग्य करते हैं, कहीं राजनेताओं की असलियत को व्यक्त करते हैं और कहीं स्वार्थपरता और अवसरवादिता को देख समझकर इन समूची स्थितियों को शब्दबद्ध करते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी काव्यधारा के एक प्रमुख कवि हैं उनकी कविताएँ दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं– राजनीतिक काव्य और प्रकृति प्रेम तथा समाज सम्बन्धी काव्य। कवि की सामाजिक कविताओं में कुछ कविताएँ इस प्रकार की हैं जिनमें समाज के दुःख–दैन्य और विषमताओं के चित्र खीचें गये हैं,जो यथार्थ की भूमिकाओं पर अवतरित हैं। कवि का हृदय ग्राम्य जीवन की विषमताओं को देखकर द्रवित हुआ है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में हिन्दी प्रदेश के लोक–प्रचलित जातीय गान की लय विद्यमान है। एक चित्र दर्शनीय है–

"देवी के बैल कोई खोल ले गया
रस्सी समेत कोई चोर ले गया
बेटों की जोत कोई मार ले गया
आँखों में आँसू की धार दे गया।"[1]

फूल–पौधों और प्राकृतिक–सौन्दर्य के प्रति गहरा आकर्षण केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में पाया जाता है, ऐसा ही एक चित्र दृष्टव्य है–

"फूलों से लदी–
अत्यधिक उत्फुल्ल–
खड़ी है बोगनबेलिया
पड़ोस के घर के बाहर
झुकी–झुकी!
ऊपर से नीचे तक
पातहीन पूरी सिन्दूरी है।"[1]

---

1. सम्पादक : लीलाधर मंडलोई–कविता के सौ बरस (वर्तमान साहित्य का शताब्दी कविता विशेषाँक), पृ० 116

केदारनाथ अग्रवाल की सौन्दर्य–दृष्टि मार्क्सवादी भावों और विचारों के माध्यम से सामने आयी है। यह सौन्दर्य–दृष्टि जीवन की समग्र अभिव्यक्ति में सौन्दर्य के कण खोजती है और जनजीवन एवं परिवेश की यथार्थ स्थिति को इंगित करती हैं काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

"आया लेकिन ठिठुरा–ठिठुरा,
बादल ओढ़े,
बिना फूल–फुंदना के आया,
अबकी बार बसन्त।
इससे हमने नहीं मनाया
पहली बार बसन्त!
चला गया बेकार बसन्त!!"[2]

त्रिलोचन मुख्यतः आत्म–विश्लेषण के कवि हैं। इसके माध्यम से उन्होंनें किसानी जीवन एवं परिवेश का चित्रण किया है। उसमें किसान जीवन की रीति–नीति, आस्था, विश्वास, आशा–निराशा, मुक्ति–कामना, गरीबी आदि के अनगिनत चित्र उरेहे गये हैं। अन्य प्रगतिवादी कवियों की तरह त्रिलोचन ने भी लोकभाषा के मुहावरों से अपनी भाषा को अभिव्यंजनाक्षम बनाया है। ग्रामीण परिवेश एवं लहलहाती फसलों से भरे खेतों को कवि ने कुछ इस प्रकार चित्रित किया है–

"गेहूँ जौ के ऊपर सरसों की रंगीनी
छाई है, पछुआ आ आकर इसे झुलाती
है, तेल से बसी लहरें कुछ भीनी भीनी
नाक में समा जाती हैं, सप्रेम बुलाती
है मानों यह झुक–झुक कर। समीप ही लेटी
मटर खिलखिलाती है, फूलभरा आँचल है,।"[3]

त्रिलोचन की कविताओं में बड़ी सादगी और धरती की सोंधी गन्ध मिलती है। ग्राम्य–संस्कृति में पारिवारिक सम्बन्धों में एक गहरा राग एवं आत्मीयता का

---

1. प्रधान सम्पादक : नामवर सिंह,–आलोचना,–त्रैमासिक 2000 (अंक दो–जुलाई–सितम्बर), पृ० 65
2. केदारनाथ अग्रवाल–अपूर्वा, पृ० 77
3. सम्पादक : केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन–प्रतिनिध कविताएँ, पृ० 93

भाव पाया जाता है खेतों–खलिहानों, फसलों से ग्रामीण जनों को बहुत लगाव होता है। त्रिलोचन की कविता 'चॉदनी चमकती है गंगा बहती जाती है' में धरती के प्रति कुछ वैसा ही ममत्व भाव अभिव्यक्त हुआ है–

"कुछ सुनती हो,
कुछ गुनती हो,
यह पवन, आज यों बार–बार
खींचता तुम्हारा आँचल है
जैसे जब तब छोटा देवर
तुम से हठ करता है जैसे
तुम चलो जिधर वे हरे खेत।
वे हरे खेत–
है याद तुम्हें?–
मैनें जोता तुमने बोया
धीरे–धीरे अंकुर आये
फिर और बढ़े
हमने तुमने मिलकर सींचा
फैली मनमोहन हरियाली
धरती माता का रूप सजा
उन परम सलोने पौदों को
हम दोनों ने मिल बड़ा किया।"[1]

त्रिलोचन समग्रतः ग्राम्य परिवेश एवं प्रकृति में रचे–बसे कवि हैं। उनकी कविताओं में हमारी चिरपरिचित ग्राम्य संस्कृति जीवंत हो उठी है।

प्रगतिवादी कविता ने जनजीवन को देखा, हृदयंगम किया और कविताबद्ध किया। यही कारण है कि इस कविता में जनजीवन की भीतरी और बाहरी दोनों ही तस्वीरें उभकर सामने आयीं हैं। सामाजिक उन्नति और नवनिर्माण के दौरान न केवल रूढ़ियों पर प्रहार किया गया है अपितु धार्मिक और नैतिक मान्यताओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए शोषितों ओर पीड़ितों के प्रति मानवतावादी भावनाओं को व्यक्त किया गया है। प्रगतिवादी कविता की एक उल्लेखनीय विशेषता अन्तर्राष्ट्रीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यंजना की इमारत प्रगतिवाद के उस जीवन–दर्शन पर खड़ी हे जो इस धारा के कवियों में

---

1. सम्पादक : केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन–प्रतिनिध कविताएँ, पृ० 97

धरती–प्रेम से उत्पन्न हुआ है। राष्ट्र के प्रति प्रेम, देश की धरती के प्रति प्रेम और सम्मान प्रकृति–सौन्दर्य का चित्रण, ग्राम्य जीवन एवं संस्कृति से गहरा जुड़ाव प्रगतिवादी कविता की प्रमुख विशेषता है।

(v) प्रयोगवाद :

प्रयोगवाद का उदय प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में हुआ इसलिए यह स्वाभाविक था कि प्रयोगवाद समाज की तुलना में व्यक्ति को, विचारधारा की तुलना में अनुभव को, विषयवस्तु की तुलना में कलात्मकता को श्रेयस्कर मानता। प्रयोगवाद शब्द दो शब्दों के संयोग का परिणाम है–"प्रयोग" और "वाद"। इसमें पहला शब्द "प्रयोग" विज्ञान से सम्बन्धित है तो दूसरा शब्द "वाद" सिद्धान्त या मताग्रह के घेरे से सम्बन्धित है। प्रयोगवाद से जुड़े कवियों के सम्बन्ध में उसके पुरस्कर्ता अज्ञेय का कहना है कि न तो "ये कविता के किसी एक "स्कूल' के कवि हैं, या कि साहित्य जगत के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक हैं बल्कि उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है, अभी राही हैं– राही नहीं, राहों के अन्वेषी।"[1] प्रयोग के विषय में लक्ष्मीकान्त वर्मा का कहना है कि "प्रयोग प्रतिभा–सम्पन्न कलाकार की सहज प्रकृति है। प्रतिभा की मूल प्रवृत्ति है कि वह नयी अनुभूति और आत्मबोध के नये स्तरों को विकासशील दृष्टि से, नये माध्यम और नयी पृष्ठभूमिकाओं से, देखने की सजग प्रेरणा दे।"[2] प्रयोगवाद के विषय में डॉ0 नामवर सिंह का कहना है कि "प्रयोगवाद कोरे रूपवाद से अधिक व्यापक प्रवृत्ति तथा विचार धारा का वाहक है जिसमें थोड़े–थोड़े से अंतर के साथ अनेक ह्रासोन्मुखी मध्यवर्गीय मनोवृत्तियों और विचारधाराओं का समावेश हो गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रयोगवाद उत्तर–छायावाद की समाजविरोधी अतिशय व्यक्तिवादी मनोवृत्ति का ही बढ़ाव है।"[3] दूसरा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने

---

1. सम्पादक : अज्ञेय–तार सप्तक, पृ० 10
2. लक्ष्मीकान्त वर्मा–नयी कविता के प्रतिमान, पृ० 184
3. डॉ0 नामवर सिंह–आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉं, पृ० 94

कविता में प्रयोगधर्मी चेतना को किसी 'वाद' नाम देने का विरोध करते हुए लिखा है कि "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, न ही हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने–आप में इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हमें 'प्रयोगवादी' कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जिना हमें 'कवितावादी' कहना।"[1] सात प्रयोगवादी कवियों में मुक्तिबोध, नेमिचन्द जैन भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा, 'अज्ञेय' हैं।

प्रयोगवाद का मूलाधार वैयक्तिकता या व्यक्तिवाद है। छायावादी वैयक्तिकता से यह इस अर्थ में भिन्न है कि पहले में भावुकता का प्राधान्य था तो दूसरे में बौद्धिकता का। यह मुख्यतः शहरी जीवनकी जटिलता से संबद्ध है इसमें यथार्थवाद नहीं, यथार्थ का अमूर्तन मिलता है। जीवन की जटिलताओं को भोगने के कारण प्रायः सभी प्रयोगवादियों ने बौद्धिकता का वरण किया है। इनकी बौद्धिकता राग प्रेरित नहीं है। उसमें बौद्धिक चमत्कार का अंश इतना अधिक है कि यह अनुभव ही नहीं होता कि कविता का सम्बन्ध राग से भी हो सकता है।

अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक कहा जा सकता है। उनके चिंतन और कविता का सरोकार सर्जनात्मक लेखन की समस्याओं से है। अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति के प्रति विशेष लगाव के दर्शन होते हैं। उनके अधिकांश प्रिय प्रतीक भी प्राकृतिक हैं जैसे नदी तट, मछली, सागर, चिड़िया, चाँदनी, साँझ, इन्द्रधनुष आदि। कवि प्रकृति की हर घटना तथा जनजीवन की हर गतिविधि में अपने को प्रकट करता है। हर मधुर एवं कटु–तिक्त अनुभवों को वह यथार्थवादी दृष्टि से देखता है। काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"उष : काल :
अनायास उठ गया चेतना से निद्रा का आँचल–
मिला न परपार्थक्य, पड़ा मैं स्तण्ध अचंचल;
मैं ही हूँ वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता–

---

1. सम्पादक : अज्ञेय–दूसरा सप्तक, पृ० 6

मैं ही वह मीनार–शिखर का प्रार्थी मुल्ला–
मैं वह छप्पर–तल का अहंलीन शिशु–भिक्षुक–"[1]

अज्ञेय अपनी सोच और तकनीकी में आधुनिक हैं, वे आत्मचेतस्, आत्मनिष्ठ और एक हद तक आत्मग्रस्त हैं। यह आत्मग्रस्तता उनके चिंतन और काव्य दोनों में मुखर है उनका काव्य जहाँ–जहाँ मौन की मुखरता और रहस्य दर्शन से मुक्त है वहाँ–वहाँ वह संवेदनशील बन पड़ा है। अज्ञेय ने पद–बंधों को विशिष्ट ढंग से संघटित करके उन्हें गुणयुक्त बनाया है। नाद, लय, बैविध्य, विशेषण वक्रता विस्मयात्मक और विराट अर्थबोध युक्त शब्दों का चुनाव संबोधन प्रगीतात्मकता, लघु–दीर्घ वाक्यों के छन्दत्व से संघटना का जो ग्राफ बनता है उससे कविता तराशकर एक गढ़ी हुई मूर्ति के समान प्रतीत होती है। नाद योजना से ही कविता को दीर्घायु मिलती है। इसे अज्ञेय ने दो क्षेत्रों से चुना है– प्रकृति के क्षेत्र से और कर्म के क्षेत्र से। जैसे ओस की तिप्–तिप्!, बेसुर डाक–, 'हाक्! हाक! हाक!, 'थाक्! थाक्! थाक्!' आदि नाद कवि ने जीवन–जगत और प्रकृति से चुने हैं। 'पावस–प्रात, शिलङ! कविता में प्रकृति का चित्र दृष्टव्य है–

"भोर बेला। सिंची छत से ओस की तिप्–तिप्!
पहाड़ी काक की विजन को पकड़ती–सी क्लान्त बेसुर डाक–
'हाक्! हाक्! हाक्!'
मत सँजों यह स्निग्ध सपनों का अलस सोना–
रहेगी बस एक मुट्ठी खाक।
'थाक्! थाक्! थाक्!' '[2]

अज्ञेय की व्यष्टि चेतना के विषय में रामकमल राय लिखते हैं कि "अज्ञेय खुले मन से स्वीकार करते हैं कि उनकी व्यष्टि के रूद्ध जीवन की कुटी की खिड़कियाँ सदा समष्टि की ओर खुली रहती हैं। वहीं से उन्हें हँसी मिली है, धैर्य मिला है, दया मिली है। उन्हें बराबर एक सूत्र मिलता रहा जो दूसरों को उनसे जोड़ता रहा, व्यक्ति की 'इकली व्यथा के बीज को लोक–मानस की

---

1. सम्पादक : अज्ञेय–तार सप्तक, पृ० 228
2. अज्ञेय–सदानीरा : संपूर्ण कविताएँ–भाग–1, पृ० 218
(काव्यसंकलन–हरी घास पर क्षण भर)

सुविस्तृत भूमि में पनपा सका'।"[1] अज्ञेय का व्यक्ति इतना उन्मुक्त है, इतना स्वतन्त्र है, इतना सम्पूर्णता में खोया हुआ है कि उसकी आनन्द साधना की राहें भी अनोखी प्रतीत होती हैं। निम्न पंक्तियों में उस व्यष्टि के उन्माद का एक मनोरम चित्रण देखा जा सकता है–

"सूँघ ली है साँस भर–भर
गन्ध मैं ने इस निरन्तर
खुले जाते क्षितिज के उल्लास की,
खा गया हूँ नदी–तट की
लहरती बिछलन जिसे सौ बार
धो–धो कर गयी है अंजली वातास की,
पी गया हूँ अधिक कुछ मैं
स्निग्ध सहलाती हुई–सी
धूप यह हेमन्त की।"[2]

प्रेम, प्रकृति और पीड़ा को नये रूप में प्रस्तुत करने वाले अज्ञेय अपनी प्रयोगशील और प्रगतिशील वृत्ति के कारण किंचित आध्यात्मिक हो गये हैं। अज्ञेय अपने परिवेश के प्रति जागरूक कवि हैं आधुनिक बोध के सहारे वह लोक से प्रतिबद्ध हैं लोक और प्रकृति से संपृक्ति की यह भावना अज्ञेय के काव्य में अनेक स्तरों पर उद्घाटित हुई है।

मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष की चेतना से युक्त प्रयोगवादी कवि हैं। उनकी कविताएँ उनके आत्म–संघर्ष का ही प्रतिफलन हैं। मुक्तिबोध वस्तुतः तीखे सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। सामाजिक संघर्ष ही उनके आत्म–संघर्ष का कारण है। सामाजिक यथार्थ उनकी कविताओं में अँधेरे के रूप में मौजूद है। यथार्थ उनके यहाँ भयानक खबर की तरह है, उनकी कविताएँ सामाजिक यथार्थ और आत्म–संघर्ष से जुडकर फैंटेसी का निर्माण करती है।

मुक्तिबोध द्वारा लिखित कविता "ब्रह्मराक्षस' आत्मग्रस्त और आत्मचेतस मनोवृत्ति से युक्त है। विश्वचेतस् होना दुष्कर कार्य है। अपने–आप में आत्मग्रस्त

---

1. रामकमल राय–अज्ञेय : सृजन की समग्रता, पृ० 55
2. अज्ञेय :– सदानीरा : सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–2, पृ० 67
   (काव्य–संकलन–'अरी ओ करूणा प्रभामय)

पांडित्य में डूबा हुआ, बुव्द्धिजीवी ब्रह्मराक्षस होता है। ब्रह्मराक्षस लोकजीवन से लिया गया मिथक है। उसका दावा है कि सूर्य तक उसे प्रणाम करता है। वह स्वयं बड़े–बड़े दार्शनिक विचारों और मतवादों की व्याख्या करता है बुद्धिजीवी अपने–आप में तिरस्करणीय नहीं हैं वशर्ते वह विश्वचेतस् हो और अपने ज्ञान का संवेदनात्मक स्तर पर आत्मग्रस्त बावड़ी के बाहर प्रसार करता हो 'ब्रह्मराक्षस' कविता की मिथकीय चेतना से युक्त प्रकृतिपरक काव्यपंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"बावड़ी की इन मुँडेरों पर
मनोहर हरी कुहनी टेक सुनते हैं
टगर के पुष्प–तारे श्वेत्
वे ध्वनियाँ।
सुनते हैं करौंदी के सुकोमल फूल
सुनता है उन्हें प्राचीन औदुम्बर
सुन रहा हूँ मैं वही
पागल प्रतीकों में कही जाती हुई
वह ट्रैजिडी
जो बावड़ी में अड़ गयी।"[1]

शमशेर मूलतः प्रयोगवादी कवि हैं। इस दृष्टि से वे अज्ञेय की परम्परा में आते हैं यद्यपि शमशेर बैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी कवि हैं, परन्तु उनका कवि सौन्दर्य वादी है। शमशेर और अज्ञेय की प्रयोगवादी दृष्टि के मूलभूत अन्तर को स्पष्ट करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह कहते हैं कि– "शमशेर और अज्ञेय में अन्तर यह है कि शमशेर के प्रयोगवाद का रथ संवेदना का धरातल नही छोड़ता। लेकिन जिस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर का रथ धरती से चार अंगुल ऊपर चला करता था उसी प्रकार अज्ञेय का प्रयोगवादी रथ भी संवेदना के धरातल से चार अंगुल ऊपर चलता है। शमशेर अपनी निजी अनुभूतियों उनकी बारीक बुनावट ओर प्रायः दुरूहता के कारण भी लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं।"[2] शमशेर में प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक है उनकी कविता में शूक्ष्म और संश्लिष्ट अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। उनका झुकाव अमूर्तन की और अधिक है। उत्कृष्ट

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 40
2. डॉ0 बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 433

शिल्प और आत्मीयता का भाव उनकी कविताओं में अधिक पाया जाता है शमशेर मुख्यतः प्रेम और प्रकृति–सौन्दर्य के कवि हैं–कहीं दोनों अलग हैं कहीं दोनों का अद्‌भुत रासायनिक घोल है। वे अपने चित्रों को बनाने में अनेक रंगों का प्रयोग करते हैं जैसे–मटमैले, धुँधले, साँवले, उदास,। सूर्योदय का एक रंगारंग दृश्य अवलोकनीय है–

"प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो
स्लेट या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।"[1]

काली सिल थोडी केसर से धुल जाती है, फिर स्लेट पर लाल खडिया मल दी जाती है, नील जल में गौर देह झिलमिला जाती है। यह है सूर्योदय : रंगीन बिम्बों से बुना हुआ जागरण का पर्व, जो अपनी रचना में अद्‌भुत है।

प्रयोगवाद सामान्यतः व्यष्टि चेतना का काव्य रहा है। प्रयोगवाद में व्यक्त व्यष्टि चेतना में न केवल व्यक्तिवादी अहंवादी दृष्टि की सत्ता है वरन् उसका दृढ़ता से प्रतिपादन भी देखने को मिलता है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता के प्रति यह आग्रह मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति है। जो वैयक्तिक असंतोष से उपजी है। प्रयोगवादी दौर में मध्यवर्ग का असंतोष सामाजिक धरातल पर व्यक्त होने के बजाय वैयक्तिक धरातल पर व्यक्त हुआ है। प्रयोगवादी कविता में भावुकता के बजाय बौद्धिकता का आग्रह आधिक है। प्रयोगवादी कवियों ने जीवन के यथार्थ को रंगीन, मोहक और भावमय रूप में प्रस्तुत न करके उसे सहज और साधारण रूप में प्रस्तुत किया है। इन सब के बावजूद प्रयोगवादी

---

1. सम्पादक : नामवर सिंह, शमशेर बहादुर सिंह–प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 102

कवियों में पर्याप्त मात्रा में लोक सम्पृक्ति पायी जाती है जिसको हम सामान्य जन–जीवन, प्रकृति और नारी संबंधी कविताओं के वर्णन में देख सकते हैं। प्रयोगवादी कवि की निगाह में वे उपेक्षित और निरादृत गाँव भी समा गये हैं जहाँ अभाव की पीड़ा सहते हुए लोग छोटी–छोटी चीजों को पाने के लिए तरस रहे हैं।

(vi) नयी कविता :

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी शिविर और समाजवादी शिविर के बीच बढ़ते तनाव का असर तत्कालीन लेखकों और बुद्धिजीवियों पर भी पड़ा। इन दोनों शिविरों के बीच बढ़ते तनाव ने शीतयुद्ध को जन्म दिया। इस दौर में ऐसे सांस्कृतिक और साहित्यिक संगठनों ने जन्म लिया जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा और समाजवादी देशों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। यह कहा गया कि मार्क्सवाद हर तरह की स्वतन्त्रता का अपहरण करता है।

समाजवादी देशों में न जनता को न ही बुद्धिजीवियों–लेखकों को स्वतन्त्रता प्राप्त है। यह भी कहा गया कि पूँजीवाद और समाजवाद तथा वाम और दक्षिण जैसे भेद आज अनावश्यक हैं। व्यक्ति की स्वतन्त्रता सर्वोच्च मूल्य है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति को लेकर भी नये लेखकों और कवियों में असंतोष का भाव था। प्रगतिवादी लेखकों ने तो स्वतन्त्रता को अधूरा बताया ही था, नयी कवितावादी भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति से असन्तुष्ट थे।

आजादी मिलने के बाद शासन सत्ता जिन वर्गों के हाथ में आई उससे जनता की समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं था। स्वतन्त्र भारत में जनता का असन्तोष बढ़ा, देश में आर्थिक विषमता बढ़ी और बेरोजगारी पनपी। असंतुलित विकास हुआ तथा राष्ट्रीय एकता और बाहरी दबावों की समस्याओं का विस्तार हुआ। इस राष्ट्रीय स्थिति ने मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों को निराश और कुंठित किया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चलने वाले शीतयुद्ध ने उन्हें दिग्भ्रमित भी किया। नयी कविता काव्यान्दोलन इसी पृष्ठभूमि में उदित हुआ।

'नयी कविता' पत्रिका का 1954 में प्रकाशन लघु पत्रिकाओं की एक लघु श्रृंखला का क्रम है। 'नये पत्ते' 'नयी कविता' 'निकष' 'प्रतिमान' जैसी पत्रिकाएं परिमल–वृत्त के लेखकों द्वारा आयोजित हुईं। नयी कविता के इतिहास में 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन 'तार सप्तक' के प्रकाशन के उपरान्त दूसरी उल्लेखनीय घटना है। "ऐतिहासिक दृष्टि से नयी कविता 'दूसरा सप्तक (1951 ई0)' के बाद की कविता को कहा जाता है।"[1] दूसरा सप्तक का प्रकाशन 'तार सप्तक' के प्रकाशन के आठ वर्ष के उपरान्त सन् 1951 ई0 में हुआ। अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में लिखा है कि "तार सप्तक का प्रकाशन जब हुआ, तब मन में यह विचार जरूर उठा था कि इसी प्रकार की पुस्तकों का एक अनुक्रम प्रकाशित किया जा सकता है जिसमें क्रमशः नये आने वाले प्रतिभाशाली कवियों की कविताएं संगृहीत की जाती रहें।"[2]

नयी कविता पद अब एक व्यापकतर अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसमें कविता ही नहीं वरन् उससे पूरे रचना–युग की प्रवृत्तियां व्यंजित होती हैं, जिन्हें समष्टि रूप में 'नवलेखन' भी कहा गया है। नयी कविता में मनुष्य के महत्व के विषय में बिचार करते हुए प्रो0 रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं कि "नयी कविता में मनुष्य और उसके समग्र अनुभव को पकड़ने का यत्न हुआ है। यो मनुष्य को उसकी सम्पूर्णता में देखने और समझने की प्रतिज्ञा हर नये वैचारिक और रचना आन्दोलन ने की है। 15वीं शती के यूरोपीय पुनर्जागरण से लेकर 20वीं शती की हिन्दी छायावादी कविता तक। पुनर्जागरण का प्रधान बल समग्र मनुष्य ('होल मैन') की धारणा पर था, आधुनिक हिन्दी कवि भी कहता है कि जाति, वर्ण, संस्कृति समाज से 'मूल व्यक्ति' को फिर से चालकर निकाला जाय।"[3]

नयी कविता को एक काव्यान्दोलन के रूप में विज्ञापित और प्रतिष्ठापित करने का श्रेय 'नयी कविता' नामक पत्रिका को ही है। वास्तव में जिस प्रकार

---

1. डॉ0 कान्तिकुमार– नयी कविता, पृ० 18
2. सम्पादक : अज्ञेय दूसरा सप्तक (भूमिका) पृ० 5
3. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी आधुनिक कविता यात्रा, पृ० 83

छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद का आरम्भ जब से माना जाता है उससे पूर्व ही उनके आविर्भूत होने के संकेत और प्रमाण मिलते हैं। इसी प्रकार नयी कविता भी सन् 1955 ई0 के पूर्व जन्म ले चुकी थी। यह उल्लेखनीय है कि कतिपय समीक्षकों ने नयी कविता की धारा को सन् 1954 ई0 में प्रकाशित 'नयी कविता' नामक पत्रिका से अनिवार्यतः जोड़ने का उद्योग किया है, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि 'नयी कविता पत्रिका से किसी नये काव्यान्दोलन का जन्म नहीं हुआ वरन् सन् 1954 ई0 में नयी कविता के प्रथम अंक के प्रकाशन के बाद हिन्दी जगत में जो व्यापक एवं तीव्र प्रतिक्रिया हुई उसी के कारण यह नाम (नयी कविता) प्रचलित और प्रतिष्ठित भर हुआ। अतः नयी कविता को 1954 या 1955 के बाद की ही कविता नहीं माना जा सकता। जिस काव्य धारा का जन्म पहले ही हो चुका था, 1954 के लगभग उसका सर्वसम्मत नामकरण संस्कार भर हुआ, यह कहना वस्तुस्थिति के अधिक निकट है।

'नयी कविता'' के विषय में डॉ0 नगेन्द्र का मानना है कि 'नयी कविता' भारतीय स्वतन्त्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया, जिनमें परम्परागत कविता से आगे नये भाव बोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प विधानों का अन्वेषण किया गया। यह अन्वेषण साहित्य में कोई नयी वस्तु नहीं है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो प्रायः सभी नये वाद या नयी–नयी धारायें अपने पूर्ववर्ती वादों या धाराओं की तुलना मे कुछ नवीन अन्वेषण की प्यास लिए दिखायी पड़ती हैं। यह साहित्य की नवीनता सदैव श्लाध्य है यदि वह अपना सम्बन्ध बदलते हुए सामाजिक जीवन के मूल्य सत्यों से बनाए रखे। इस प्रकार नित नवता की एक परम्परा गतिमान रही है। फिर भी नयी कविता नाम स्वतन्त्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया, जो अपनी वस्तु–छवि और रूप–छवि दोनों मे पूर्ववर्ती प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकास होकर भी विशिष्ट है।[1]

---

1. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी – साहित्य का इतिहास, पृ० 629

नयी कविता वास्तव में लघुमानव की कविता है लघु मानव से आशय दिशाहारा एवं विचारधारा से रहित उपेक्षित सामान्य मनुष्य से है। वह लघुमानव के दैनंदिन सामान्य अनुभवों की अभिव्यक्ति करने में विश्वास रखती है। इस विषय में विजयदेवनारायण साही कहते हैं कि "मनुष्य की हर परिभाषा मूलतः 'सहज मनुष्य' की परिभाषा है। चाहे हम मनुष्य की उस परिभाषा को कितना भी विकृत या अयथार्थ क्यों न समझें। अगर वह सहज मनुष्य की न हुई तो उसे परिभाषा कहना ही व्यर्थ है।"[1]

नयी कविता में प्रकृति अपने बहुरंगी रूपों में चित्रित हुई है। उसकी सौन्दर्य चेतना में प्रकृति और नारी दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। नयी कविता का दौर वह दौर था जब देश स्वतन्त्र हो चुका था, पुराने मूल्य टूट रहे थे, देश का तेजी से औद्योगीकरण हो रहा था। लेकिन इस औद्योगीकरण ने प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य को मानव जीवन से दूर कर दिया। प्रकृति और मानव के बीच की दूरी को नये कवियों ने भिन्न–भिन्न रूपों में ग्रहण किया है। "तीसरा सप्तक' में कीर्ति चौधरी ने ग्राम्य जीवन एवं प्रकृति के प्रति अपने आकर्षण को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त किया है– "गाँव, कस्बे और शहर के विचित्र मिले–जुले प्रभाव मेरे ऊपर पड़ते रहे। अमराई में बिखरती मदिर गंध और तालों में ढ़ेर–ढ़ेर फूली कोका बेली मुझे नहीं भूलती। यन्त्रों कलों की गड़गड़ाहट और कोलाहल भरी सड़कों वाले नगर भी अपरिचित नहीं रहे।"[2] औद्योगिक बस्तियों और शहरों के कोलाहल से ऊबा हुआ मानव मन अन्ततः प्रकृति की सघन छाँव में बसे ग्राम्य परिवेश में ही सुखद अनुभूति पाता है। इस संदर्भ में विजय देव नारायण साही की कविता "मानव–राग' उल्लेखनीय है–

"जो कभी न पाये फूट धरा की छाती के छाले–
इतिहास भरे ये गाँव युगों की मौन जलन वाले,
इन बन्द खंडहरों में मेरी अभिलाषाएँ घुटतीं–
मैं ओढ़ समय की राख सुलगता मन्द अनल पाले,

---

1 सम्पादन : (जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेवनारायण साही)– नयी कविता : सैद्धान्तिक पक्ष (खण्ड–1) पृ० 184

2. सम्पादक : अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृ० 30

ये हरे मटर के खेत, प्रवंचक जव की हरियाली,
यह भरी सुधा से ईख, झूमती सरसों मतवाली,
यह बहुत शक्तिमय, बहुत सुघर मेरे श्रम का सपना
पर रन परमिथ्या अधिकारों की रेखायें काली
है मुक्ति माँगती शिथिल
भुजाएँ मेरी, अविनाशी।
हिल उठा कभी जो मस्त मलय भूली विश्वासों–सा,
झुक–झुक पड़ता मानव का मन सरपत की साँसों–सा,
मैं कभी देखता किसी कुसुम को चूम रही तितली
रो–रो उठता सुनसान हृदय बिखरे मधुमासों सा
है नीड़ खोजती, मुक्त कल्पना
मेरी आकाशी! "[1]

नयी कविता की प्रकृतिपरक छवियों में नगरीय, ग्रामीण और आँचलिक–सभी तरह का परिवेश प्रस्तुत किया गया है। नयी कविता का प्रकृति पक्ष अधिक प्रभावी है। नयी कविता के प्रकृति परक दृष्टिकोण में एक नवीनता आँचलिकता को लेकर है। आँचलिक प्रकृति को व्यक्त करने वाली कविताओं में ग्राम्याँचलों के स्वप्निल वातावरण और वहाँ की संस्कृति को पूरी जीवंतता में चित्रित किया गया है। धर्मवीर भारती की 'बोआई का गीत' शीर्षक कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है–

"गोरी–गोरी सोंधी धरती–कारे–कारे बीज
बदरा पानी दे!
क्यारी–क्यारी गूँज उठा संगीत
बोनें वालों! नयी फसल में बोओगे क्या चीज?
बदरा पानी दे!
मैं बोऊँगा वीरबहूटी, इन्द्रधनुष सतरंग
नये सितारे, नयी पीढ़ियां, नये धान का रंग
बदरा पानी दे!
हम बोएँगी हरी चुनरियाँ, कजरी, मेंहदी–
राखी के कुछ सूत और सावन की पहली तीज!
बदरा पानी दे!"[2]

---

1. सम्पादक : अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृ० 179–80
2. धर्मवीर भारती– ठण्डा लोहा, पृ० 44

नयी कविता के कवियों में भारती रोमांटिक मनोभावों के कवि हैं। भारती की रचनाओं में प्रेम के विविध रूपों का जीवन्त और आवेगमय चित्रण मिलता है। इनकी यथार्थ जीवन दृष्टि से प्रेरित रचनाएँ भी रोमानी अनुभूतियों से मुक्त नहीं हैं। उनमें आदिम गन्ध की तड़प और लोक–जीवन की रूमानी छवि की पकड़ है। इनकी कविताएँ मूलतः गीतात्मक हैं। इन कविताओं में लोक–परिवेश की मस्ती के साथ–साथ उदासी और सूनापन भी उभरता है। 'मेघ–दुपहरी' शीर्षक कविता का एक चित्र दर्शनीय है–

"छू गयी मुझको
न जाने कौन बिसरी बात
भूला क्षण
जिस तरह छू जाय नागिन
फूल को खिलते पहर
ढल रही है
मेघ की चूनर लपेटे दोपहर!"[1]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में गहरी लोकोन्मुखता पायी जाती है, वे ग्राम्य चेतना तथा कृषक जीवन के कवि हैं। लोक गीतों की धुन पर सजी हुयी एवं गाँव की माटी में पगी हुयी मोहक कविताओं का सृजन उन्होंने किया है। एक चित्र दृष्टव्य है–

"झीलों के पानी खजूर हिलेंगे,
खेतों के पानी बबूल
पछुवा के हाथों में शाखें हिलेंगी,
पुरवा के हाथों में फूल,
आना जी बादल जरूर,
धान तुलेंगे कि प्रान तुलेंगे,
तुलेंगे हमारे खेत में,
आना जी बादल जरूर!"[2]

नयी कविता की सत्यान्वेषी एवं वैविध्यमय दृष्टि की ओर संकेत करते हुए डॉ0 जगदीश गुप्त लिखते हैं कि – "नयी कविता जीवन को एक विशेष प्रकार से देखती है। विचार करने पर ज्ञान होता है कि प्रकृत्या यह दृष्टि ऋषि–दृष्टि

1. धर्मवीर भारती, सात गीत–वर्ष, पृ० 45
2. सम्पादक : अज्ञेय – तीसरा सप्तक, पृ० 128

है। इस स्थापना का अभिप्राय यह नहीं है कि नयी कविता के कवि, कवि न होकर ऋषि हैं। यहाँ ऋषि दृष्टि से तात्पर्य उस निर्भीक सत्यान्वेषी दृष्टि से है जो सुन्दर–असुन्दर, मधुर–तिक्त, रूचिर–कटु, सरल–जटिल, बहिरंतर बैविध्यमय एवं अनेकमुखी जीवन को समग्र रूप में स्वीकार करते हुए वास्तविकता को विवेकयुक्त तटस्थ भाव से देखती है।"[1] इसी बैविध्यमय दृष्टि का ही परिणाम है कि नयी कविता एक तरफ जहाँ महानगरीय जीवन बोध से जुड़ती है वहीं दूसरी तरफ लोक संपृक्ति तथा ग्राम्य–चेतना भी उसकी एक प्रमुख विशेषता है। वह सहज लोक जीवन के करीब पहुँचने का प्रयत्न कर रही है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्राम्य चेतना से जुड़े हुए नयी कविता के एक प्रमुख कवि हैं। प्रकृति और गाँव उनकी कविताओं से गहरे जुड़े हुए हैं। गाँव को उन्होंने बहुत करीब से देखा है, देखा ही नहीं उन्होंने वहाँ के समाज में व्याप्त अभाव, दरिद्रता एवं अपनापे को भरपूर जिया है। उनका स्वयं का कहना है : "कस्बेनुमा छोटे–से शहर के बाहर, चारों तरफ दूर–दूर तक फैले खेतों, तालों और छोटे–छोटे गाँवों के बीच बचपन बीता, जिसमें खेतों की मेड़ों, घर के पास अनाथाश्रम के बच्चों के अलावा आर्थिक संघर्ष से उत्पन्न पारिवारिक कलह भी बचपन के साथी रहे।"[2] खेत–खलिहान से होकर ग्राम्य–जीवन की चहल–पहल और उनके चूल्हे–चौके तक की खबर लेने वाली सर्वेश्वर की कविताएँ ग्राम्य परिवेश को पूरी विविधता एवं जीवंतता में उद्घटित करती हैं। एक चित्र दृष्टत्य है–

"खेतों की मेड़ों पर धूल–भरे पाँव को,
कुहरे में लिपटे उस छोटे से गाँव को,
नये साल की शुभकामनाएँ।
जाँते के गीतों को, बैलों की चाल को,
करघे को, कोल्हू को, मछुओं के जाल को,
नये साल की शुभ कामनाएँ।
इस पकती रोटी को, बच्चों के शोर को,
चौके की गुनगुन को, चूल्हे की भोर को,

---

1. सम्पादन : (जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजय देव नारायण साही)– नयी कविता : सैद्धान्तिक पक्ष (खण्ड–1) पृ० 42
2. सम्पादक : अज्ञेय– तीसरा सप्तक, पृ० 206

नये साल की शुभकामनाएँ।
वीराने जंगल को, तारों को, रात को,
ठंडी दो बन्दूकों में घर की बात को,
नये साल की शुभकामनाएँ।"[1]

नयी कविता के कवियों में केदारनाथ सिंह, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, केदारनाथ अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, नरेश मेहता, गिरजा कुमार माथुर आदि की कविताओं में प्रकृति एवं ग्राम्य परिवेश के प्रति गहरा जुड़ाव पाया जाता है।

नयी कविता ने ग्राम्य–जीवन को पूरी बैविध्यता में चित्रित किया है। ग्राम्य–संस्कृति की उत्सवधर्मी चेतना को नये कवियों ने बड़े मनोयोग से रेखांकित किया है। ग्राम्याँचलों की स्थानीय परम्पराओं, लोकविश्वासों, फसल कटाई के उत्सवों, सुहागिनों के आमोद–प्रमोद आदि का मोहक चित्र नये कवियों ने खींचा है। नयी कविता में ग्राम्य बोध की अभिव्यक्ति कहीं अतीत की स्मृतियों के रूप में तो कहीं भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति के रूप में हुयी है। गाँव में एक तरफ जहाँ समृद्ध प्राकृतिक परिवेश में पल रही खुशहाल जिन्दगियाँ है, वहीं दूसरी तरफ अभाव, गरीबी, दरिद्रता, बाढ़ और अकाल का दंश झेल रहे ग्रामीण लोग भी हैं, जिनका यथार्थ और मार्मिक चित्रण नयी कविता के कवियों ने किया है। अतः हम कह सकते हैं कि नयी कविता के कवियों ने ग्राम्य परिवेश को समग्रता में पूरी जीवंतता के साथ उद्‌घटित किया है।

मनुष्य ने अपनी भावात्मक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए विराट प्रकृति से ही प्रेरणा ग्रहण की। प्रकृति में व्याप्त विविध रंगों, गंधों, ध्वनियों एवं मोहक छवियों ने उसे आकर्षित किया एवं प्रेरित किया। अतः काव्य–सृजन में केन्द्रीय भूमिका प्रकृति की ही रही है। ज्यों–ज्यों मानवीय सभ्यता का विकास होता गया मनुष्य ने अपने बुद्धि कौशल के बल पर अपने चारों ओर के प्राकृतिक घेरे को नष्ट करके यान्त्रिक और मशीनी घेरा खड़ा कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य और प्रकृति के बीच के परम्परागत रिश्ते में दरार पड़ने लगी। औद्योगिक

1. सम्पादक : अज्ञेय– तीसरा सप्तक, पृ० 213

और महानगरीय सभ्यता ने उसे यान्त्रिक और कृत्रिम बना दिया। ग्राम्य सभ्यता तथा वहाँ के प्राकृतिक परिवेश से वह कट गया जिसका असर हमें काव्य में भी दिखायी देता है। काव्य में भी शहरी एवं महानगरीय संस्कृति अभिव्यक्ति पाने लगी। हिन्दी कविता आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक ग्राम्य बोध से परिपूर्ण है। महानगरीय सभ्यता एवं शहरी संस्कृति ने विभिन्न पड़ावों पर उसे कुछ कमजोर अवश्य किया परन्तु उसकी निर्बाध गति को वे रोक नहीं सके। सम्पूर्ण हिन्दी कविता में लोक जीवन, ग्राम्य संस्कृति एवं प्राकृतिक परिवेश को घनीभूत रूप में चित्रित किया गया है। हिन्दी कविता में ग्राम्य–बोध अपने विविध आयामों में अभिव्यक्त हुआ है।

□□□□□